अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

❑ मूल्य : 5.00
❑ अंक : 10
❑ 1-15 जनवरी, 2014
❑ वर्ष : 37

व्यक्तिगत आचरण का महत्त्व

कल की दुनिया का स्वरूप एक ऐसा समाज होगा, एक ऐसा समाज होना चाहिए, जिसका आधार अहिंसा होगी। यह एक दूर का आदर्श, एक अव्यवहार्य स्वप्नमय ध्येय भले ही मालूम हो, लेकिन वह तनिक भी अप्राप्य नहीं है, क्योंकि हम उसका अमल अभी, और यहीं कर सकते हैं। भविष्य की इस जीवन-प्रणाली का, अर्थात अहिंसक प्रणाली का अंगीकार एक व्यक्ति भी कर सकता है; उसे दूसरे के लिए राह देखने को जरूरत नहीं। और यदि एक व्यक्ति उसका स्वीकार कर सकता है, तो क्या व्यक्तियों का समूह या समूचे राष्ट्र नहीं कर सकते? मनुष्यों की ऐसी धारणा होती है कि हमारा उद्देश्य पूरी तरह सफल नहीं होगा, इसलिए वे मार्ग आरंभ करने में हिचकते हैं। हमारी प्रगति में यह वृत्ति ही सबसे बड़ा विघ्न है। एक ऐसा विघ्न, जिसे हरएक मनुष्य, अगर वह चाहे तो, दूर कर सकता है।

(लिबर्टी, लंदन, 1931)

–मो. क. गांधी

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र
सर्वोदय जगत

वर्ष : 37, अंक : 10
1-15 जनवरी, 2014

सर्व सेवा संघ
द्वारा प्रकाशित
अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

संपादक
बिमल कुमार
मो. 9235772595

प्रसार व्यवस्थापक
उमेश कुमार

मूल्य : पांच रुपये

शुल्क
वार्षिक : 100 रुपये
आजीवन : 1,000 रुपये

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ-प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी-221 001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
sarvodayavns@yahoo.co.in
Website : sssprakashan.com

विज्ञापन दर
पूरा पृष्ठ : 2000 रुपये
आधा पृष्ठ : 1000 रुपये
चौथाई पृष्ठ : 500 रुपये

अंदर के पृष्ठों पर...

1. नये सामाजिक चिंतन... 2
2. लोकपाल बिल के आगे... 3
3. संसदीय व्यवस्था... 4
4. लोकसत्ता की लड़ाई अभी... 7
5. अच्छे विचारों के अकाल... 10
6. विश्व-व्यापार-एक युद्ध... 13
7. जल-प्रबंधन पर कोई... 16
8. समग्र एवं मजबूत... 17
9. शांति, समानता और... 19
10. समाज संस्थावाद से मुक्त... 20

नये सामाजिक चिन्तन की आवश्यकता

❑ आदिल खान

''कहीं दर्द तो कहीं बेबसी मिली,
हर तरफ रोती हुई बेटी मिली।
जहन में खौफ का समन्दर मिला,
आंखों में अश्कों की नदी मिली।''

देश में महिला यौन शोषण के ग्राफ में तेजी से इजाफा हुआ है। शायद ही कोई ऐसा दिन जाता हो जब महिला उत्पीड़न से संबंधित खबरें प्रिंट व इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की सुर्खियां न बनती हों। इन सब सुर्खियों को पढ़ने और सुनने के बाद मां-बाप के हाथों में चाय की प्याली थमी की थमी रह जाती है। फिर न खाने का फिक्र होती है, न ऑफिस जाने का तनाव और न दुनियादारी के काम। दोनों टकटकी बांधे खुद से यह सवाल करते हैं कि आखिर कब रुकेगी यह जुल्म की अनवरत दास्तान?

दिल्ली गैंगरेप के बाद जिस तरह से पब्लिक मोबलाइज हुई, उसे देखकर लगा कि लोगों के नजरिये में बदलाव आया है। भविष्य में इस तरह की कोई घटना नहीं घटेगी। अफसोस सारी उम्मीदें धरी-की-धरी रह गयीं और अगली सुबह फिर वही 'बलात्कार के बाद युवती की हत्या', 'एक और बिटिया की अस्मत से खिलवाड़', 'मासूम बच्ची बनी हवस का शिकार' जैसी खबरें हमारे टेलीविजन की स्क्रीन पर चल रही थीं। हाल ही में महिला यौन शोषण में सुप्रीम कोर्ट के एक पूर्व जज, पत्रकारिता जगत की जानी-मानी हस्ती तहलका प्रमुख, प्रशासनिक स्तर के सचिव, सांसद, विधायक, आई.ए.एस. व आई.पी.एस. आदि भी गिरफ्त में आ गये। यह सब देखकर लगता है कि देश के जिम्मेदार लोग ही अपनी जिम्मेदारी को भूल गये हैं। महिलाओं के प्रति उनकी भावनाएं व संवेदनाएं शून्य हो गयी हैं।

महिला यौन शोषण के मामले में न देश की राजधानी दिल्ली महफूज है, न मुंबई न बंगलूरु और न ही तहज़ीब का शहर लखनऊ। हां, बस इतना जरूर है कि दिल्ली गैंगरेप की शिकार दामिनी ने उन महिलाओं व बेटियों को झकझोर दिया, जो चुपचाप उत्पीड़न बर्दाश्त कर रही थीं। दामिनी के दमन के बाद महिला यौन शोषण के मामले में संविधान को और सख्त बनाने व दोषियों को कठोरतम सजा देने के लिए बहुत से जन-आंदोलन चलाये गये। सरकार और कोर्ट ने लोगों की भावनाओं की कद्र करते हुए कानून में व्यापक परिवर्तन करते हुए भारतीय न्यायिक व्यवस्था दुरुस्त करने की पुरजोर कोशिशें कीं, जो बधाई के पात्र हैं। यही नहीं कोर्ट ने जनाक्रोश का सम्मान करते हुए दामिनी के हत्यारों को सजा-ए-मौत सुना दी। इस सबके बावजूद मुल्क में महिला यौन शोषण के हालात वहीं के वहीं हैं। कानून कठोर से कठोरतम बनाने के बावजूद भी जिन्दगी कूड़े के उसी पुराने ढर्रे पर खड़ी होकर मुस्करा रही है, साथ ही, देश के सवा अरब लोगों से हाथ जोड़कर प्रार्थना कर रही है कि कानून सख्त बनाने से कुछ नहीं होगा, अगर वास्तव में कुछ करना है तो सिर्फ अपनी सोच में परिवर्तन करें। कोर्ट और सरकारें कठोर कानून बना भी देंगी तो उनका पालन तो हम सभी को करना है। संविधान ने तो छोटे-से-छोटे अपराध के लिए कानून दिये हैं लेकिन हमने अपनी जिम्मेदारी को गंभीरता से समझा ही नहीं। बड़ी अजीब विडंबना है कि अपराध करते हम हैं और आरोप सरकार और कानून पर लगाते हैं। नियम और कानून के हिसाब से भारतीय संविधान दुनिया का सबसे बड़ा संविधान है। फिर भी नये कानूनों की मांग बढ़ती जाती है।

आज इस बात पर ध्यान देने की आवश्यकता है कि शोषण की शिकार बेटियां और अपराधी दोनों ही हमारे समाज का हिस्सा हैं। यदि हम अपने-अपने परिवारों को नैतिक मूल्यों, उच्च संस्कारों और मानवीय संवेदनाओं की शिक्षा-दीक्षा देंगे, तो इसके दूरगामी सकारात्मक परिणाम सामने आएंगे। जहां एक ओर नारी सम्मान की भावना को बल मिलेगा, वहीं दूसरी ओर महिला अपराधों के ग्राफ में भी तेजी से कमी आयेगी। भारत में महिला शोषण का ग्राफ और अधिक भयावह रूप ले, इससे पूर्व ही इस सारे संदर्भ को सामाजिक चिन्तन का रूप अख्तियार कर लेना चाहिए; अन्यथा यह भविष्य में प्रलयंकारी रूप धारण कर सकता है। ❑

❑ *1/7, तलैय्या लेन, फतेहगढ़, फर्रूखाबाद-209601, (उत्तर प्रदेश) मो. 9125351242*

संपादकीय

लोकपाल बिल के आगे

लोकपाल बिल संसद द्वारा पारित हो गया है। श्री अन्ना हजारे ने अपना अनशन समाप्त कर दिया। पिदले तीन वर्षों से यह सार्वजनिक विमर्श का एक महत्त्वपूर्ण मुद्दा था। वैसे तो एक लंबे अर्से से लोकपाल के निर्माण की कवायद चल रही थी। लेकिन तीन वर्ष पूर्व श्री अन्ना हजारे के नेतृत्व में लोकपाल बिल का एक प्रारूप आया था तथा उसके पक्ष में पूरे देश में एक बड़ा आंदोलन भी चला था। भारत में भ्रष्टाचार का फैलाव इतना बढ़ गया था कि आम जन उसके खिलाफ किसी भी आंदोलन का समर्थन कर रहे थे। लोकपाल के निर्माण की मुहिम, भ्रष्टाचार के खिलाफ चल रही मुहिम की एक हिस्सा थी। वर्तमान लोकपाल बिल उन अपेक्षाओं पर खरा उतरता है या नहीं, अब यह बहस का विषय बन गया है।

लेकिन इस वास्तविकता को भी स्वीकार करना होगा कि यदि श्री अन्ना हजारे के नेतृत्व में, इसके लिए आंदोलन न चला होता तो शायद यह बिल अभी न आया होता। अन्ना हजारे ने भी कहा है कि इस बिल के आने के बाद अधिक से अधिक 40 से 50 प्रतिशत तक ही भ्रष्टाचार में कमी आयेगी। हमें यह समझना होगा कि जिस भ्रष्टाचार में 40 से 50% की कमी आने की अपेक्षा है, वह केवल उस भ्रष्टाचार की ओर संकेत करता है जो सरकार के महकमों के अंदर हो रहा है।

सरकारी भ्रष्टाचार कुल शोषणकारी-दोहनकारी-अन्यायी भ्रष्टाचार का एक छोटा हिस्सा मात्र है। असली लूट एवं दोहन की संरचना तथा मात्रा इससे कहीं भी प्रकट नहीं होती। अंग्रेजों ने जब भारत को उपनिवेश बनाकर भारत की लूट और दोहन की प्रक्रिया स्थापित की, तो जिस सरकारी तंत्र/प्रशासन तंत्र के माध्यम से यह लूट व दोहन किया, उस प्रशासन तंत्र के अंदर का भ्रष्टाचार अधिक चर्चा का विषय नहीं था। अगर मान भी लें (यद्यपि यह सत्य नहीं है) कि अंग्रेजों के जमाने में सरकारी तंत्र/प्रशासन तंत्र में भ्रष्टाचार कम था, तो क्या इससे भारत के संसाधनों के लूट एवं दोहन की संरचना को औचित्य प्रदान किया जा सकता है? अंग्रेजों के जमाने के प्रशासन तंत्र का गुणगान करने वाले दया के पात्र हैं।

इस उदाहरण से हम यह बताना चाहते हैं कि भ्रष्टाचार के खिलाफ मुहिम तो जरूरी है। लेकिन यह भी समझना होगा कि जो व्यवस्था लूट और दोहन पर टिकी है, उस व्यवस्था को बदले बिना, भ्रष्टाचार के मूल का खात्मा असंभव है। अधिक-से-अधिक यह होगा कि भ्रष्टाचार करने का तौर-तरीका बदल जायेगा। कानून की पकड़ में न आये, इसके रास्ते तलाशे जायेंगे। लूट जब बड़ी और व्यापक होती है, तब लूटने वाले की कोशिश होती है कि छोटे स्तर पर भ्रष्टाचार न हो। अमेरिका एवं योरोप के कई देशों में छोटे स्तर के भ्रष्टाचार में कमी आयी है क्योंकि व्यापक लूट और दोहन की व्यवस्था के माध्यम से वे अपने कारिन्दों को लूट का थोड़ा ज्यादा हिस्सा दे पाते हैं तथा छोटे स्तर के भ्रष्टाचार के खिलाफ अधिक कड़ाई बरत पाते हैं।

भारत में किसान, आदिवासी, मछुआरे व अन्य समूह जो जल-जंगल-जमीन व खनिज जैसे प्रकृति प्रदत्त जीवन आधारों पर निर्भर करते रहे हैं, वे दोहरे शोषण चक्र व भ्रष्टाचार के शिकार होते रहे हैं। एक तो प्रत्यक्ष है, जो सरकारी अमले द्वारा होता है। किसी भी विभाग का कर्मचारी हो, वह इनका काम बिना रिश्वत लिये नहीं करता। दूसरा शोषण गहरा व व्यवस्थाजन्य है। एक तो यह कि उन्हें अपने श्रम का कहीं कम मूल्य मिलता है। क्योंकि जिन वस्तुओं/सेवाओं का ये उत्पादन करते हैं, पूंजीवादी बाजार में उसकी कीमत कहीं कम रहती है। क्योंकि पूंजीवादी बाजार की संरचना ही ऐसी है। दूसरे प्रकृति-प्रदत्त जिन जीवन आधारों से ये जुड़े रहे हैं, उनसे इन्हें धीरे-धीरे बेदखल किया जा रहा है। पूंजीवादी विकास के लिए इन प्राकृतिक स्रोतों को पूंजीवाद के पूर्ण कब्जे में लाने की जरूरत है। पूंजीवादी विकास की संरचना इसी प्रकार कार्य करती है।

इस प्रकार पूंजीवादी विकास की पूरी संरचना श्रम के शोषण, लूट एवं दोहन पर टिकी है। ऐसे में भ्रष्टाचार के खिलाफ चल रही लड़ाई, शोषण व दोहन के खिलाफ चल रहे जन-आंदोलनों का अगला कदम, उस व्यवस्था को बदलने की दिशा में होना चाहिए, जो लूट और दोहन पर टिकी है।

अन्ना हजारे के आंदोलन ने एक और बात प्रकट की है। संसद में कानून बनते हैं। लेकिन अगर जनहित के लिए कानून बनवाना है, तो उसके लिए लंबे संघर्ष की तैयारी करनी होगी। जन-आंदोलनों व जन-संघर्षों के दबाव से ही संसद में ऐसे कानूनों को बनाने की प्रक्रिया शुरू हो पायेगी। दूसरी ओर लोकशक्ति का प्रकटीकरण भी लोक आंदोलनों के माध्यम से ही संभव होगा। लोकतंत्र में लोक की भागीदारी केवल वोट डालने तक ही सीमित नहीं हो सकती। लोक आंदोलनों के माध्यम से लोक की भागीदारी सक्रिय एवं व्यापक हो पाती है। इन लोक आंदोलनों का एक दूसरा पक्ष यह होगा कि वे वैकल्पिक रचना का कार्य भी करते जायें। लोक-आंदोलनों के वैकल्पिक रचना के कार्य द्वारा भी लोक की सक्रिय एवं व्यापक भागीदारी सुनिश्चित होती जायेगी।

बिमल कुमार

संसदीय व्यवस्था लोकाभिमुख हो

❑ बाबूराव चन्दावार

सी. बी. आई. द्वारा गठित अदालत को चारा घोटाला मामलों में किसी नतीजे तक पहुंचने के लिए सत्रह वर्षों का प्रदीर्घ समय लगा। इसमें जो दोषी पाये गये उन्हें सजा भुगतने के लिए कारावास में भेज दिया गया है। वे सभी अपने को निर्दोष साबित करने के लिए सक्रिय हो गये हैं और उच्च न्यायालय के दरवाजे खटखटाने लगे हैं। इस संदर्भ में कहा जा रहा है कि भ्रष्टाचार से निपटने के लिए प्रचलित कानूनों द्वारा भी सक्रिय होकर उचित निर्णय तक पहुँचा जा सकता है। इसका दिलासा चारा घोटाले के न्यायालयीन निर्णय द्वारा मिल पाया है। इसे मानते हुए ऐसा भी एक निष्कर्ष निकाला जा रहा है कि कानूनी कार्यवाही सफलतापूर्वक किये जाने की गुंजाइश संसदीय लोकतंत्र में अवश्य है, जिसकी किसी कारणवश अनदेखी की जाती रही है। संसदीय लोकतांत्रिक व्यवस्था का प्रयोजन एवं उसकी उपयोगिता दोनों को इस धारणा के तहत शायद पुनर्स्थापित किया जाना संभव हो पायेगा। क्या इसके द्वारा भ्रष्टाचार को जड़मूल से उखाड़ बाहर करना संभव हो पायेगा? लोक-जीवन में भ्रष्टाचार जिन कारणों से बढ़ गया है, उन कारणों को सफलतापूर्वक कानूनी प्रक्रिया से नष्ट कर पाना संभव नहीं होगा। यदि कानूनी प्रक्रिया सफलतापूर्वक चलायी गयी तो उससे जो स्थिति बनेगी वह लोकतांत्रिक चरित्र के अनुरूप नहीं होगी। क्योंकि राजनैतिक स्वाधीनता प्राप्त करने के बाद अब तक लोकतांत्रिक व्यवस्था का चरित्र भ्रष्टाचार से मुक्त रखना संभव नहीं हुआ है। इसके कारणों पर संसदीय लोकतांत्रिक प्रणाली में सोचा नहीं गया है। संसदीय लोकतांत्रिक प्रणाली को भ्रष्टाचार से मुक्त रखने के लिए जिन अवसरों को उपलब्ध कराया जाना जरूरी माना जा सकता है उनके प्रति आस्था का निर्माण नहीं हो पाया है। जिन अवसरों में इस आस्था के लिए स्थान बनता है, उनके प्रति संसदीय लोकतांत्रिक प्रणाली में हमेशा ही उपेक्षा का भाव रहा है; इसलिए संसदीय लोकतांत्रिक प्रणाली लोगों की अपनी नहीं रह गयी है। वह मात्र लोक-प्रतिनिधियों की ही रह गयी है। लोगों की संसदीय प्रणाली तथा लोक-प्रतिनिधियों की संसदीय प्रणाली दोनों में जो बुनियादी अंतर बना हुआ है, वह मिट नहीं पाता है, क्योंकि लोग एवं प्रतिनिधि ये दो अलग मान्यताएं हैं। दोनों के दो अलग एवं स्वतंत्र मूल्य हैं। इन दोनों को जब मिलाया जाता है, तब उससे लोगों का मूल्य घटकर नष्ट होता है एवं प्रतिनिधि का मूल्य बढ़कर स्थापित होता है। इसलिए लोकतांत्रिक प्रणाली लोकाभिमुख नहीं रह गयी है। संसदीय लोकतांत्रिक प्रणाली लोकाभिमुख नहीं रह पाने का अर्थ होता है कि वह लोगों से विमुख है। यहां पर लोकाभिमुखता के अभाव में लोक-प्रतिनिधि लोकसम्मत नहीं होता है। इसलिए लोक-प्रतिनिधि लोगों का अपना नहीं हो पाता है।

राजनैतिक स्वाधीनता प्राप्त कर लिये जाने के तुरंत बाद स्वाधीनता के प्रति व्यवस्था का जो अनुबंध बनाया जाना जरूरी हो गया था, उसके प्रति न जाने क्यों उपेक्षा का भाव रह गया है। इसका परिणाम स्वाधीनता के संकल्प को भुला देना ही हो गया। स्वाधीनता आंदोलन जिस सत्याग्रह-दर्शन को अपनाते हुए आंदोलन द्वारा प्रस्तुत हुआ था, उसके प्रति उपेक्षा का भाव रहा आया है। लोकतंत्र की जननी कहे जाने वाले इंग्लैंड के ब्रिटिश पार्लियामेंट के व्यवस्थापकीय आदर्श से मुक्ति पाना संभव नहीं हुआ है। भारत का जो संविधान बनाया गया और जिसके द्वारा प्रेरित भारतीय राजनैतिक व्यवस्था का निर्माण हुआ है, वह स्वाधीनता के लिए किये गये सत्याग्रह-दर्शन से अनुप्राणित आंदोलन के संकल्प से हट गया है। वह स्वाधीनता की विपरीत दिशा में ही ले जाने वाला रह गया है, जिस कारण भ्रष्टाचार के लिए अवसर बनते जाना स्वाभाविक हो गया। भारत की राजनैतिक स्वाधीनता में इंग्लैंड की ब्रिटिश पार्लियामेंट को ही जननी कहकर उसे आदर्शवत् मानकर चलना वास्तव में बड़ी भूल थी। ब्रिटिश पार्लियामेंट के आदर्श को ही भारत की राजनैतिक व्यवस्था में स्वीकृति देकर वह भूल की गयी है। किसी भी कारण से क्यों न हो, लेकिन राजनैतिक स्वाधीनता प्राप्त कर लेने के उपरांत इसका एहसास राजनैतिक नेतृत्व को नहीं हो पाया, यह वास्तविकता थी। इसे विवाद का विषय बनाकर ही उस पर सोचने की एक मानसिकता भारत में पनपायी गयी है, जिसका निहितार्थ स्वाधीन भारत में भ्रष्टाचार के लिए अवसर प्रदान करने वाला ही कहा जा सकता है। स्वाधीनता के संकल्प के प्रति आस्था का अभाव हो जाने से निर्मित वास्तविकता ही इसे कहना भी चाहिए। राजनैतिक स्वाधीनता प्राप्त कर लेने के उपरांत सत्याग्रह-दर्शन को अपेक्षित निरंतरता की जो स्थिति अपेक्षित थी, उसे नहीं जानने तथा नहीं पहचान पाने की एक मनोदशा बन गयी थी। समय रहते इसका एहसास उस समय के नेतृत्व को नहीं हो पाया।

फिर, स्वाधीन भारत में राजनैतिक स्तर पर भ्रष्टाचार के लिए जो अवसर बना है उसकी जड़ में राजनैतिक व्यवस्था को बनाते समय स्वाधीनता आंदोलन के लिए स्वीकृत किये गये सत्याग्रह-दर्शन की दृष्टि को ही भुला देने की मानसिकता रह गयी थी। इसे

मान लेने में जो एतराज करते आये हैं, वे ब्रिटिश पार्लियामेंट को जननी मानने वाले ही हो सकते हैं। इसमें लोक प्रतिनिधि के प्रति अभिमुख हो जाने से लोगों से विमुख हो जाने की ही स्थिति बनती है और राजनैतिक व्यवस्था अपने आप भ्रष्टाचार में लिप्त हो जाती है। इसका तात्पर्य है कि स्वाधीनता में जीने के लिए राजनैतिक व्यवस्था के लिए लोकाभिमुख रहना जरूरी हो जाता है, अन्यथा राजनैतिक व्यवस्था लोगों से विमुख होकर भ्रष्ट दिशा में चली जाती है, जिसे लोकद्रोह करने वाली व्यवस्था ही कहा जा सकता है। अर्थात लोकाभिमुखता तथा प्रतिनिधियों के प्रति उन्मुखता ये दो परस्पर विरोधी एवं भिन्न मान्यताएं हैं और इनके भिन्न तथा परस्पर विपरीत अर्थ भी हैं। लेकिन संसदीय लोकतांत्रिक व्यवस्था के समर्थन में इसे नहीं जाना जाता है, परिणामस्वरूप लोक-प्रतिनिधि का निरंकुश हो जाना ही स्वाभाविक हो जाता है। ऐसे ही निरंकुश प्रतिनिधि भ्रष्टाचारी होते आये हैं, जिन्हें कानूनों द्वारा नियंत्रित करना संभव है। जो कानून लोक-प्रतिनिधियों द्वारा बहुमत से पारित किये जाते हैं, वे सभी कानून लोक-प्रतिनिधियों द्वारा जो निरंकुशता बरती जाती है, उस पर नियंत्रण करने में सक्षम नहीं होते हैं। इसलिए निरंकुशता के लिए जो भी अवसर बनते गये हैं, वे भ्रष्टाचार का आचरण करने के लिए प्रेरित करने वाले ही साबित हुए हैं। इसलिए संसदीय लोकतांत्रिक व्यवस्था, जो लोगों से विमुख होकर लोक प्रतिनिधियों के प्रति सम्मुख होती है, उसमें ही निरंकुशता के बीज बोये जाते हैं, जिसमें से भ्रष्टाचार की फसल उग आती है। इसकी संभावना तथा वास्तविकता दोनों के प्रति अनजान रही संसदीय लोकतंत्र की व्यवस्था लोकाभिमुखता के प्रति अपना उत्तरदायित्व नहीं निभा पाती है; यह संसदीय लोकतंत्र में दलगत राजनीति चलाते आयी है। दलगत राजनीति स्वभाव से ही निरंकुश हो जाती है। संसदीय लोकतंत्र में इस पर कोई उपाय कर लेने का प्रावधान नहीं है।

इसके अतिरिक्त, संसदीय लोकतांत्रिक व्यवस्था लोकाभिमुख नहीं रहने के कारण लोक प्रतिनिधि से सम्मुख रह पाने से राजनैतिक भ्रष्टाचार के लिए अवसर बने हुए हैं। इस पर दलगत राजनीति में सोचा नहीं जाता है, क्योंकि इस पर सोचने का दायित्व उठा पाना दलगत राजनीति के लिए संभव होता ही नहीं है। जब से भारत को राजनैतिक स्वाधीनता प्राप्त हुई है, तब से आज तक वह दायित्व उठाना दलगत राजनीति को संभव हुआ भी नहीं है। इस संदर्भ में सोचने पर पता चलता है कि संसदीय लोकतंत्र के लिए दलगत राजनीति उपयोगी नहीं है तथा संसदीय लोकतंत्र को इसके द्वारा हानि भी पहुंचायी गयी है। राजनीति में जिस भ्रष्टाचार के लिए अवसर बने हुए हैं, वे इसी का नतीजा है। इसलिए दलगत राजनीति से हटकर ही लोकतांत्रिक व्यवस्था का निर्माण किया जाना अनिवार्य हो गया है। भ्रष्टाचार से यदि मुक्ति पाना जरूरी लग रहा है तो उसका उपाय क्या हो सकता है, इस पर सोचने की आवश्यकता है। भ्रष्टाचारमुक्त व्यवस्था की एक ऐसी रचना करनी होगी, जिसकी बुनियाद लोगों में दायित्व निभाने की प्रेरणा तथा उसका अभिक्रम जगाते रहने से ही संभव हो सकता है। इस पर स्वाधीनता आंदोलन के जमाने से ही सोचा जाता रहा है और 'ग्राम स्वराज्य' की अवधारणा द्वारा उसके संकेत महात्मा गांधी ने दिये भी थे। इसलिए भ्रष्टाचार के चलते जो दुष्परिणाम देखे जा रहे हैं, वे इसी का नतीजा है।

राजनैतिक व्यवस्था के लोकाभिमुख स्वरूप की परिकल्पना महात्मा गांधी ने अपनी रचना 'हिन्द स्वराज्य' में 1909 में रखी थी। बदले हुए संदर्भ में इस पर सोचकर आगे बढ़ा जा सकता था। वह संभव नहीं हो पाया क्योंकि स्वाधीनता के प्रति जो एक चेतना जगाते रहने का अभिक्रम चलाया जाना आवश्यक हो गया था, वह चलाया नहीं गया। इस भूल को सुधारने की दृष्टि से जिन चेतनशील महानुभावों ने सोचा था, उनमें अग्रणी विनोबाजी तथा जे. पी. रहे हैं, जिन्होंने सत्याग्रह-दर्शन के प्रति अपनी प्रतिबद्धता जताते हुए लोगों में स्वाधीनता की चेतना को अक्षुण्ण रखने के लिए पहल की थी। विनोबाजी द्वारा प्रेरित भूदान-ग्रामदान इसी में गिनाया जाना चाहिए। जेपी द्वारा राजनीति की पुनर्रचना करने के सुझाव भी इस दृष्टि से ही महत्त्वपूर्ण माने गये हैं। इनका निचोड़ संक्षेप में प्रस्तुत किया जा रहा है, जिसे राजनैतिक व्यवस्था का लोकाभिमुख स्वरूप बनाने के लिए प्रेरक एवं उपयोगी माना जायेगा :

(क) इसका प्रथम चरण है, मतदाता संघ लोगों के अभिक्रम द्वारा निर्माण करना। सभी मतदाता संविधान सम्मत अपने मतदाता संघ का गठन करेंगे। मतदाताओं की आम सभा में सर्वसम्मति या सर्वानुमति से लोक प्रतिनिधि बनने के लिए अपेक्षित प्रत्याशियों का चयन किया जायेगा। उनके दायित्व को मतदाता संघ द्वारा सम्मत घोषणा-पत्र द्वारा निर्धारित किया जायेगा। उसका अनुशासन भी मतदाता संघ द्वारा किया जायेगा। राजनैतिक दलों का प्रयोजन एवं उपयोगिता अपने आप समाप्त हो जायेगी। निर्दलीय राजनीति का आरंभ मतदाता संघ द्वारा होगा। और लोक प्रतिनिधि के लिए प्रत्याशी का चयन कर लेने का अधिकार (नॉमिनेशन राइट) मतदाता संघ को ही मिल पायेगा। एक से अधिक प्रत्याशी हो सकते हैं। इन्हीं के बीच से किसी एक का प्रतिनिधि के रूप में चुनाव किया जा सकता है।

(ख) जो प्रतिनिधि चुना जायेगा उस पर नियंत्रण करने का अधिकार (कंट्रोल) मतदाता संघ को होगा। किसी भी राजनैतिक दल को वह अधिकार नहीं होगा।

(ग) मतदाता संघ के नियंत्रण को नहीं मानने वाले तथा मतदाता संघ के घोषणा-पत्र के अनुसार आचरण नहीं करने वाले प्रतिनिधि को वापस बुलाने का (रिकॉल) अधिकार मतदाता संघ को ही होगा।

(घ) इस तरह लोक प्रतिनिधि बनने के लिए प्रत्याशियों का चयन करना, प्रतिनिधियों पर नियंत्रण रखना तथा अयोग्य साबित होने पर प्रतिनिधियों को वापिस (रिकॉल) बुला लेना, इन अधिकारों को प्राप्त करने वाले मतदाता संघ को सुचारु ढंग से चलाते रहने का प्रश्न उपस्थित होता ही है। सत्ता की राजनीति से हटकर रहने वालों द्वारा उनके सद्भावनापूर्ण प्रयास द्वारा ही इस प्रश्न का समाधान किया जा सकता है। सत्ता की आकांक्षा नहीं रखते हुए सत्ता निरपेक्ष भावना से चलाने वालों की मतदाता संघ में पर्याप्त मात्रा में उपस्थिति अनिवार्य मानी जानी चाहिए। क्योंकि इन्हीं के द्वारा मतदाता संघ का कार्यक्षम निर्माण किया जाना तथा उसे सफलतापूर्वक चलाना संभव हो सकता है।

इस सब पर विस्तार से सोचने की आवश्यकता है, क्योंकि लोकाभिमुख राजनैतिक व्यवस्था का निर्माण करने हेतु इसकी बारीकियों में जाकर विचार-मंथन की जरूरत है। इसी में से लोकाभिमुख राजनैतिक व्यवस्था का निर्माण किया जाना संभव हो सकता है। जहां तक स्वाधीनता के प्रति दायित्व निभाने का प्रश्न है, उसके समाधान हेतु इस तरह के प्रयासों के द्वारा ही पहल की जा सकती है; अन्य कोई उपाय कर लेना संभव नहीं होगा। तात्पर्य है कि महात्मा गांधी द्वारा संकल्पित 'समुद्री वृत्ताकार' (ओशनिक सर्कल), विनोबा द्वारा संकल्पित 'भूदान-ग्रामदान' तथा जे.पी. द्वारा संकल्पित 'लोक सहभागिता', तीनों के उचित समन्वय द्वारा एक नई संरचना की जा सकती है। उसे साकार कर लेने से ही सुदृढ़तापूर्वक लोकाभिमुख राजनैतिक व्यवस्था का निर्माण किया जा सकता है। इसे भारत के संविधान द्वारा सम्मत कर लेना आसान नहीं होगा; क्योंकि जिस धारणा की बुनियाद पर भारत का संविधान बनाया गया है वह स्वाधीनता के सत्याग्रह-आंदोलन के संकल्प से पूरी तरह से हटकर ही रही है। इसलिए स्वाधीनता के संकल्प से जो संविधान बन सकता है उसे बनाने के लिए निश्चय ही कठिनाइयों का सामना करना पड़ सकता है। हमें स्वाधीनता आंदोलन की कड़ी में ही इसे देखना-समझना होगा। इसे स्वाधीनता आंदोलन के अगले चरण के रूप में स्वीकृत कर लेने से ही उसकी जन आंदोलन की शक्ल-सूरत बन सकती है। वह जन आंदोलन, क्रांति का दिशा-दर्शन करने वाला होगा।

जे. पी. ने जिस समय 'संपूर्ण क्रांति' की घोषणा की थी, उस समय उनके मन में क्या था, इस पर भरोसे के साथ कुछ भी कहा नहीं जा सकता है। जे. पी. को स्पष्ट हो गया था कि जन आंदोलन के बिना 'संपूर्ण क्रांति' नहीं हो पायेगी। क्योंकि प्रारंभ से ही जो बिहार में जे.पी. आंदोलन से जुड़े रहे थे, उसमें से गुजरे हैं, उन्हें इसका एहसास अवश्य होगा, इसमें संदेह नहीं करना चाहिए। जेपी ने कहा था कि 'संविधान द्वारा क्रांति नहीं होती है, क्रांति द्वारा संविधान बनता है।' इसे बदले हुए नये संदर्भ में हमें याद कर लेना चाहिए; क्योंकि 'संपूर्ण क्रांति' के लिए अगले चरण की दिशा में बढ़ने का समय अब समीप आ गया है। ❑

❑ *डी-1, 13, सईनगर, सिंहगढ़ रोड, पुणे-411030 (महाराष्ट्र) फोन : 020-24250693*

कविता

समय और आकाश के उस पार...

–शक्ति कुमार

मेरे मालिक है तेरे दीदार की ध्वनि ओम्
इस जहां पर उस खुदा के प्यार की ध्वनि ओम्।

ओम् के स्वर में छिपी है सृष्टि की धारा
ओम् के आदेश से पलता जगत सारा
ओम् के संकेत से संहार हो जाता
ओम् से ही फिर जनमता विश्व दोबारा

समय और आकाश के उस पार की ध्वनि ओम्।

ओम् से ही होती हमें पहचान ईश्वर की
ओम् या आमीन ही ध्वनि एक ही स्वर की
सूफियों का नाच हो या कृष्ण की बंसी
है सभी में दिव्य लीला एक दिलवर की
दिल की गलियों में विहरते यार की ध्वनि ओम्।

कोई हिन्दू, कोई मुस्लिम, कोई ईसाई
उसके बन्दे, उसकी दुनिया, हैं सभी भाई
एक धरती ही नहीं तारे भी उसके हैं
उसकी रहमत से सभी ने रौशनी पाई

अर्श पर फैले हुए परिवार की ध्वनि ओम्। ❑

लोकसत्ता की लड़ाई अभी बाकी

❑ अशोक भारत

आजादी के 67 वर्ष हुए। इन बीते वर्षों में विकास के नाम पर बड़े-बड़े नगर-महानगर खड़े किये गये। 'एक्सप्रेस वे' बना, सड़कें चौड़ी हुईं। विशाल कल-कारखाने, बांध बनाये गये। विज्ञान एवं तकनीक के क्षेत्र में नये कीर्तिमान स्थापित हुए। राष्ट्र अणुशक्तिसम्पन्न बना। चन्द्रयान की सफलता के बाद मंगलयान का प्रक्षेपण सफलतापूर्वक हुआ। इन सब उपलब्धियों के बीच एक सवाल जो आजादी की लड़ाई के दौरान भी था, आज भी बना हुआ है, जिसे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने भी 'नमक सत्याग्रह' के दौरान उठाया था। वह है 'आर्थिक असमानता का सवाल', आज यह बहुत बड़ा सवाल बन गया है।

1930 में 'नमक सत्याग्रह' के दौरान महात्मा गांधी ने तत्कालीन वायसराय को पत्र लिखकर पूछा था कि ''आपकी आमदनी और सबसे गरीब आदमी की आमदनी के बीच 5000 गुना का फर्क है, फिर भी आपको नमक पर टैक्स लगाते हुए शर्म नहीं आयी।'' आजादी के 67 वर्ष बाद स्थिति और खराब हुई है। असंगठित क्षेत्र के मजदूरों की स्थिति के अध्ययन के लिए भारत सरकार द्वारा गठित अर्जुन सेन गुप्ता की रिपोर्ट यह बतलाती है कि देश के 78 प्रतिशत लोगों की दैनिक आमदनी 20/- या इससे कम है। दूसरी तरफ देश में अरबपतियों की संख्या बढ़ रही है।

आजादी के बाद तो यह विषमता घटनी चाहिए, लेकिन हुआ ठीक इसके उल्टा। मेरे जैसे लोगों के मन में यह सवाल उठता है कि इस आजादी का क्या करें, जिसमें गुलामी के दौर से ज्यादा विषमता बढ़ी है?

आर्थिक विषमता बढ़ने का सीधा मतलब है गरीबी, बेरोजगारी मे इजाफा होना। इस समय देश का हर चौथा आदमी भूखा है और हर दूसरा बच्चा कुपोषण का शिकार। पिछले 20 वर्षों में लगभग 3 लाख किसानों ने आत्महत्या की है। किसानों की स्थिति तो हमेशा ही दयनीय रही है मगर इससे पूर्व कभी भी किसानों ने हताश होकर आत्महत्या का विकल्प नहीं चुना था, अब आजाद भारत में यह हो रहा है, वह भी तब, जब देश को यह अहसास कराने की कोशिश हो रही है कि भारत एक महाशक्ति बन रहा है। बाजारवादी अर्थव्यवस्था में जीवन के मूल आधार, जल, जंगल, जमीन, खनिज, पहाड़ आदि कुदरत के अनमोल उपहारों पर बड़ी-बड़ी देशी-विदेशी कंपनियों का कब्जा हो रहा है। आज आदमी के जीवन जीने के आधार छीने जाने से गरीबी और विषमता में वृद्धि हो रही है। भारतीय संविधान का घोषित लक्ष्य सभी नागरिकों के लिए सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय दिलाना है। मगर आजादी के बाद विकास की जो नीति अपनायी गयी, उससे आर्थिक असमानता लगातार बढ़ रही है। इन नीतियों से न केवल अमीरी-गरीबी के बीच का फासला बढ़ा है बल्कि क्षेत्रीय असंतुलन भी पैदा हुआ है। राज्यों के बीच भी फासला बढ़ा है। एक तरफ बिहार, झारखंड, ओडिशा, छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश आदि राज्य हैं, दूसरी तरफ महाराष्ट्र, गुजरात, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, हरियाणा, पंजाब आदि राज्य हैं। हरियाणा-पंजाब में प्रति व्यक्ति आय और बिहार-झारखंड में प्रति व्यक्ति आय में कई गुना का फासला है। ऐसा ही कृषि एवं सेवा क्षेत्र में भी हुआ है।

स्पष्ट है कि विकास की नीति की दिशा गलत है जो देश को लगातार संविधान के घोषित लक्ष्य से दूर ले जा रही है। आजादी के बाद हमने विकास के उसी पश्चिमी मॉडल को अपनाया, जिसके बारे में अब स्वयं पश्चिम में सवाल खड़े हो रहे हैं। महात्मा गांधी ने कहा था ''मेरे सपनों का स्वराज तो गरीबों का स्वराज होगा। जीवन की जिन आवश्यकताओं का उपयोग राजा और अमीर लोग करते हैं, वही तुम्हें भी मिलना चाहिए, इसमें फर्क के लिए स्थान नहीं हो सकता।'' *(यंग इंडिया, 26.3.31)*

उन्होंने आगे कहा कि ''मेरी कल्पना के स्वराज्य के बारे में किसी को कोई गलतफहमी भी नहीं होनी चाहिए। इसका अर्थ है विदेशी नियंत्रण से मुक्ति और पूर्ण आर्थिक स्वतंत्रता।'' लेकिन देश आज बापू की कल्पना के स्वराज्य से काफी दूर जा चुका है। 26 नवंबर 1949 को संविधान सभा में बोलते हुए डॉ. बी. आर. अम्बेडकर ने आगाह किया था कि आर्थिक आजादी और सामाजिक न्याय के बिना राजनैतिक आजादी भी कायम नहीं रह पायेगी। डॉ. अम्बेडकर की चेतावनी आज सही प्रतीत हो रही है। नयी वैश्विक व्यवस्था में देश की राजनीतिक आजादी भी खतरे में पड़ गयी है।

भारतीय लोकतंत्र आज संक्रमण काल से गुजर रहा है, संकट में है। भारतीय संसद और विधान सभाओं में बाहुबलियों, आपराधिक पृष्ठभूमि के लोगों एवं धनपतियों का वर्चस्व बढ़ता जा रहा है। 2004 के लोकसभा चुनाव में निर्वाचित सांसदों में 154 करोड़पति थे जबकि 2009 में यह संख्या बढ़कर 300 से ऊपर हो गयी। राजनीति में तेजी से पूंजीपतियों का एकाधिकार होता जा रहा है और वह आम लोगों की पहुँच या दखल से दूर होती जा रही है। उसी प्रकार संसद में दागी सांसदों की संख्या में वृद्धि हुई है, चौदहवीं (2004) लोकसभा में दागी सांसदों की संख्या 128

थी, जो पन्द्रहवीं (2009) लोकसभा में बढ़कर 150 हो गयी, जिनमें 73 सांसद ऐसे हैं जिनके खिलाफ गंभीर आपराधिक मामले दर्ज हैं। लोकसभा के लगभग 30% और राज्यसभा के 17% सांसदों के खिलाफ आपराधिक मामले दर्ज हैं, जो लोकतंत्र के लिए खतरे की घंटी है। अभी हाल ही में न्यायालय से दोषी करार नेताओं को चुनाव लड़ने से वंचित करने का आदेश सर्वोच्च न्यायालय ने पारित किया था। उस आदेश को रद्द करने के लिए सभी दल एकजुट हो गये। आज सत्ता पर काबिज और विपक्षी पार्टियों की आर्थिक नीति में कोई फर्क नहीं है। अर्थनीति राजनीति का सकेन्द्रित रूप है। जब राजनीति से आम आदमी के जिन्दगी के सवाल गायब हो जाते हैं तो राजनीति अस्मिता के सहारे चलती है, भावनात्मक मुद्दों को उभार कर की जाती है। तब राजनीति जातिवाद, धर्म, साम्प्रदायिकता, प्रांतवाद, भाषावाद, क्षेत्रवाद के सहारे चलती है। नेताओं ने यह कला सीख ली है कि कैसे आम आदमी के वास्तविक हितों को नजरअंदाज कर मात्र कुछ शिगूफे छोड़कर, भावनाओं को भड़काकर चुनाव जीता जा सकता है। महात्मा गांधी ने आज से लगभग 104 वर्ष पूर्व 'हिन्द स्वराज्य' में ब्रिटिश पार्लियामेंट, जिसके तर्ज पर भारतीय संसद का गठन किया गया है, पर कठोर टिप्पणी की थी। उन्होंने कहा था कि ''पार्लियामेंट के मेम्बर दिखावटी एवं स्वार्थी पाये जाते हैं। सब अपना मतलब साधने को सोचते हैं। बड़े सवालों पर जब पार्लियामेंट चलती है तो इसके मेम्बर पैर फैलाकर लेटते हैं या बैठे-बैठे झपकियां लेते हैं। उस पार्लियामेंट के मेम्बर इतनी जोर से चिल्लाते हैं कि सुनने वाले हैरान-परेशान हो जाते हैं।'' ये सब बातें आज हमारी संसदीय व्यवस्था पर शत-प्रतिशत लागू होती हैं। आज पार्टियों में आंतरिक लोकतंत्र का सर्वथा अभाव है। जब पार्टियां ही लोकतांत्रिक आधार पर नहीं चल रही हैं तो फिर उनसे संसदीय लोकतंत्र को मजबूत करने की उम्मीद कैसे की जा सकती है।

उदारीकरण के दौर में लोकतांत्रिक संस्थाओं और लोगों के लोकतांत्रिक अधिकार भी प्रभावित हुए हैं। अपनी जिन्दगी और जीविका के लिए लोकतांत्रिक तरीके से संघर्ष कर रहे लोगों पर राज्य हर प्रकार के अड़ंगे लगा रहा है, उनके खिलाफ बल का प्रयोग कर रहा है, जबकि पूंजीपतियों को संरक्षण प्रदान कर रहा है। महात्मा गांधी ने मृत्यु के एक दिन पूर्व अपने अंतिम लेख में लिखा था—''लोकशाही के मकसद की तरफ हिन्दुस्तान की प्रगति के दरमियान सैन्यशक्ति पर लोकसत्ता को प्रधानता देने की लड़ाई अनिवार्य है।'' अब वक्त आ गया है कि लोकशाही को मजबूत करने की दृष्टि से इस दिशा में ठोस पहल की जाए।

भारत की संस्कृति, समन्वय की संस्कृति रही है। भारत में अनेक मानव समुदायों में विशेष तरह के पारस्परिक संबंध तथा आदर्शों का चुनाव भारतीय जीवन को संचालित करते रहे हैं। भारत में यह संबंध यूरोप तथा दुनिया के अन्य कई भागों से भिन्न रहे हैं। यूरोप में जब एक कबायली समूह एक जगह से दूसरी जगह गया तो उसने वहां के प्राचीन बाशिंदों को या तो वहां से भगा दिया या खतम कर दिया। इसके विपरीत भारत में हजारों वर्ष से विभिन्न कबायली समूह आते रहे और पुराने कबीलों के साथ अकसर एक खास तरह की जातीय व्यवस्था करके बस गये। इस क्रम में कोल, द्रविड़, आर्य, शक, हूण, पठान, तुर्क, अरब, सिथियन आदि अनेक प्रजातियों के कबीले भारत में आये और भारत की जीवनधारा में मिलकर विलीन हो गये। इससे एक-दूसरे के रीति-रिवाजों, पूजा-पाठ, देवी-देवताओं आदि को बरदाश्त करने तथा समझने की परंपरा बनी, जिससे विश्वासों की पारस्परिक सहिष्णुता कायम हुई, जो आगे चलकर परंपरा बनी जिससे धार्मिक मतभेदों को खत्म करने के लिए तलवार के बजाय संवादों और शास्त्रार्थों का सहारा लिया गया। भारतीयता का यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंग है। इसे सहन करने और जब्त करने की शक्ति से भारत, भारत बना रहा।

भारत की अस्मिता को बनाये रखने में दूसरी महत्त्वपूर्ण चीज थी जीवन के आदर्शों का चुनाव। भारतीय आदर्शों में बाहरी वस्तुओं के बजाय आंतरिक उपलब्धियों पर अधिक जोर दिया गया। इससे भारत के दर्शन और धर्म में संतोष, आत्म नियंत्रण, निःस्वार्थ सेवा, अपरिग्रह आदि केन्द्रीय मूल्य बन गये। परोपकार को तो सभी धर्मों का सार ही मान लिया गया। इस तरह के विचार उपनिषदों, पुराणों तथा बौद्ध, जैन सभी धर्मों में प्रधान है। कालांतर में इस्लाम के आने के बाद भारतीय धर्म और इस्लाम के पारस्परिक प्रभाव से, आपसी विभेदों को मिटाती हुई संत कवियों की परंपरा चली तो उसमें इन्हीं तत्त्वों को प्रधानता मिली। उदाहरण के लिए सूफी संत फरीद (13वीं सदी) की इन पंक्तियों में इसी भावना की अभिव्यक्ति होती है :

''रुक्खी-सुक्खी खाय के ठंडा पानी पीव।
देखि परायी चोपड़ी ना तरसावे जीव।''

इसी तरह दूसरे सूफी संत दातागंज बख्स (11वीं सदी) कहते हैं—ऐ मुरीदों, त्याग और परोपकार ही फकीरी की कुंजी है। दूसरों को सुख पहुंचाने के लिए कष्ट उठाना और दूसरों के लाभ के लिए अपने नुकसान की ओर ध्यान न जाना, स्वार्थ को त्यागना ही धर्म है।

जाहिर है सदियों से भारत साझा संस्कृति का देश रहा है। सबको साथ लेकर चलने की परंपरा, बहुलतावादी स्वरूप, देश की ताकत रहे हैं। अनेकता में एकता देश की विशिष्टता है। लेकिन सांप्रदायिक शक्तियों व

कुछ संकीर्ण सोच वाले लोग देश को गुमराह करने में लगे हैं। आजादी की लड़ाई में भी इन सांप्रदायिक शक्तियों के कारण देश को भारी नुकसान उठाना पड़ा, अंततः देश का बँटवारा हो गया। एक बार फिर सांप्रदायिक, फासीवादी शक्तियां देश में सर उठा रही हैं, सामाजिक ताना-बाना एवं सौहार्द बिगाड़ने में लगी हैं तथा देश की एकता और अखंडता के लिए गंभीर चुनौती पेश कर रही हैं। जरूरत इस बात की है कि देश की साझी विरासत को कायम रखते हुए इस सांप्रदायिक हिंसा व नफरत फैलाने तथा लोगों को बांटने की कोशिश को नाकाम किया जाये।

आज एक तरफ हिंसा एवं आतंकवाद सर उठा रहा है तो दूसरी तरफ भ्रष्टाचार, नैतिक मूल्यों में हो रही गिरावट हमारी चिन्ता का कारण बनी हुई है। महात्मा गांधी ने 'हिन्द स्वराज्य' में कहा है कि—'गरीब हिन्दुस्तान तो अंग्रेज की गुलामी से छूट जायेगा लेकिन अनीति से पैसे वाला बना हिन्दुस्तान गुलामी से नहीं छूट सकेगा।'' आज हिन्दुस्तान पैसे वाला अवश्य बन रहा है, मगर चारों तरफ अनीति-अधर्म का बोलबाला है। दिन-रात उद्घाटित होने वाले भ्रष्टाचार की अंतहीन घटनाओं से ऐसा लगता है कि यह देश घोटालों का देश बन गया है। हमारे सामाजिक जीवन का शायद ही कोई क्षेत्र हो; जो भ्रष्टाचार से अछूता हो। यह एक नये प्रकार की बीमारी है जो भारत की अन्तरात्मा को खोखला कर रही है। युगद्रष्टा महात्मा गांधी ने बहुत पहले इसके प्रति सचेत किया था, जो आज सत्य साबित हो रहा है।

सवाल यह है कि इस प्रकार की सभी समस्याओं का हल क्या है? महात्मा गांधी ने जिस राष्ट्र-निर्माण का कार्य स्वतंत्रता संग्राम के दौरान शुरू किया था, वह कार्य अभी पूरा होना बाकी है। इतिहास का यह अनुभव रहा है कि दुनिया बदलने की अगुवाई हमेशा नयी पीढ़ी ने की है। आदमी बीमार होता है तो डॉक्टर के पास जाता है, जब पूरे देश में यह बीमारी फैली हो तो उसका इलाज तो युवाओं के पास ही है। महात्मा गांधी ने 10.9.31 को यंग इंडिया में लिखा, ''मैं ऐसे भारत के लिए कोशिश करूंगा, जिसमें गरीब से गरीब लोग भी यह महसूस करेंगे कि यह उनका देश है—जिसके निर्माण में उसकी आवाज का महत्त्व है। मैं ऐसे भारत के लिए कोशिश करूंगा, जिसमें ऊंचे और नीचे जैसे वर्गों का भेद नहीं होगा और विविध संप्रदायों में पूरा मेलजोल होगा। ऐसे भारत में अस्पृश्यता या शराब और दूसरी नशीली चीजों के अभिशाप के लिए कोई स्थान नहीं हो सकता। उसमें स्त्रियों के वही अधिकार होंगे, जो पुरुषों के होंगे। शेष दुनिया के साथ हमारा संबंध शांति का होगा, न तो हम किसी का शोषण करेंगे न किसी के द्वारा शोषण होने देंगे।''

आज आसमान छूती आर्थिक विषमता, लोकतंत्र, लोकतांत्रिक संस्था एवं अधिकारों की रक्षा साम्प्रदायिकता, फासीवाद, हिंसा एवं आतंकवाद तथा भ्रष्टाचार आदि समस्याओं से निजात पाने के लिए सशक्त राष्ट्रीय अभियान की आवश्यकता है। इस कार्य के लिए मानवता प्रेमी देशभक्त लोगों को एक साथ आने एवं पहल करने की आवश्यकता है, जिसमें युवाओं की भूमिका निर्णायक होगी। तभी हम सब अपने सपनों व गांधीजी की कल्पना के भारत का निर्माण कर पायेंगे, जिसमें समाज के सबसे अंतिम पायदान पर अवस्थित व्यक्ति भी यह महसूस करे कि यह उसका देश है, जिसके निर्माण में उसकी भूमिका महत्त्वपूर्ण है। ❑

अपना गांव एक राष्ट्र

स्वराज्य के माने है, सारे देश का राज्य। जब दूसरे देश की सत्ता अपने देश पर नहीं रहती है, तो स्वराज्य हो जाता है। लेकिन जब हरएक गांव में स्वराज्य हो जाता है, तो उसको रामराज्य कहा जाता है। गांव के सब लोग बुद्धिमान बने हैं, किसी पर सत्ता चलाने की जरूरत नहीं पड़ती है, तब उसका नाम है 'रामराज्य'। जब गांव के झगड़े शहर की अदालत में जाते हैं और शहर के लोग उनका फैसला करते हैं, तो उसका नाम है गुलामी, दासता या परतंत्रता। गांव के झगड़े गांव में ही मिटाने का नाम है, स्वतंत्रता या स्वराज्य। और गांव में झगड़े ही नहीं होते हैं, इसका नाम है रामराज्य। हमें पहले ग्रामराज्य बनाना होगा और फिर रामराज्य। देश का स्वराज्य तो हो गया है, अब हमें ग्रामराज्य बनाना है। इसीलिए हम गांव-गांव जाकर लोगों को समझाते हैं कि तुम्हारे गांव का भला किसमें है, इस पर खुद सोचो। अपने गांव को एक राष्ट्र समझो। जैसे आज आप भारतमाता की जय बोलते हैं, उसी तरह अपने गांव की जय बोलनी चाहिए।

हरएक ग्राम की जय होती है, तो देश की जय होगी। जब अपना हरएक अवयव काम करेगा, तब सारा शरीर काम करेगा। आँख, कान, पाँव, हाथ, दाँत अच्छा काम करेंगे, तो सारा शरीर अच्छा काम करेगा। अगर इनमें से एक भी कम काम करता है, तो देह का काम अच्छा नहीं होगा। आँख काम नहीं करती है और बाकी सारा शरीर काम करता है, तो उसका नाम है अंधा। कान काम नहीं करते हैं और बाकी सारा शरीर काम करता है, तो उसका नाम है बहरा। उसी तरह सारे गाँव अपना काम अच्छी तरह से चलायेंगे, गांव-गांव में स्वराज्य बनेगा, तो अपना स्वराज्य अच्छा बनेगा। हमें हरएक गांव में राज्य चलाना होगा। –विनोबा

('गांव-गांव में स्वराज्य')

अच्छे विचारों के अकाल का संकट

❑ अनुपम मिश्र

आज से कोई सौ बरस पुरानी घटना है। सन् 1910 की बात है। राजेन्द्र बाबू तब कलकत्ता में वकालत पढ़ रहे थे। यहां एक दिन उन्हें उस दौर के प्रसिद्ध बैरिस्टर श्री परमेश्वर लाल ने बुलाया था। वे कुछ समय पहले ही गोखलेजी से मिले थे। बातचीत में गोखलेजी ने उनसे कहा था कि वे यहां के दो-चार होनहार छात्रों से मिलना चाहते हैं। परमेश्वरजी ने सहज ही राजेन्द्रबाबू का नाम सुझा दिया था।

राजेन्द्रबाबू गोखलेजी से मिलने गये, अपने एक मित्र श्रीकृष्ण प्रसाद के साथ। सर्वेंट्स ऑफ इंडिया सोसायटी की स्थापना अभी कुछ ही दिन पहले हुई थी। गोखलेजी उस काम के लिए हर जगह कुछ युवकों की तलाश में थे। उन्हें यह जानकारी परमेश्वरजी से मिल गयी थी कि ये बड़े शानदार विद्यार्थी हैं। वकालत उन दिनों ऐसा पेशा था जो प्रतिष्ठा और पैसा एक साथ देने लगा था। इस धंधे में सरस्वती और लक्ष्मी जुड़वां बहनों की तरह आ मिलती थीं।

कोई डेढ़ घंटे चली इस पहली ही मुलाकात में में राजेन्द्रबाबू से श्री गोखले ने सारी बातों के बाद आखिर में कहा था, ''हो सकता है तुम्हारी वकालत खूब चल निकले। बहुत रुपये तुम पैदा कर सको। बहुत आराम और ऐश-इशरत में दिन बिताओ। बड़ी कोठी, घोड़ा-गाड़ी इत्यादि दिखावट का सामान सब जुट जाए; और चूंकि तुम पढ़ने में अच्छे हो तो इसलिए तुम पर यह दावा और भी अधिक है।''

गोखलेजी थोड़ा रुक गये थे। कुछ क्षणों के उस सन्नाटे ने भी राजेन्द्र बाबू के मन में न जाने कितनी उथल-पुथल पैदा की होगी। वे फिर बोलने लगे, ''मेरे सामने भी यही सवाल आया था, ऐसी ही उमर में। मैं भी एक साधारण गरीब घर का बेटा था। घर के लोगों को मुझसे बहुत बड़ी-बड़ी उम्मीदें थीं। उन्हें लगता था कि मैं पढ़कर तैयार हो जाऊंगा, रुपये कमाऊंगा और सबको सुखी बना सकूंगा। पर मैंने उन सबकी आशाओं पर पानी फेर कर देशसेवा का व्रत ले लिया। मेरे भाई इतने दुखी हुए कि कुछ दिनों तक तो वे मुझसे बोले तक नहीं। हो सकता है यही सब तुम्हारे साथ भी हो। पर विश्वास रखना कि सब लोग अंत में तुम्हारी पूजा करने लगेंगे।''

श्री गोखले के मुख से मानो एक आकाश-वाणी-सी हुई थी। बाद का किस्सा लंबा है, लंबी है राजेन्द्रबाबू के मन में कई दिनों तक चले संघर्ष और घर में मचे कोहराम की, रोने-धोने की, बेटे के साधु बन जाने की आशंका की कहानी।

इस किस्से से हम लोग ऐसा न मान लें कि वे अगले ही दिन अपना सब-कुछ छोड़ देशसेवा में उतर पड़े थे। श्री गोखले खुद बड़े उदार थे। उन्होंने उस दिन कहा था कि ''ठीक इसी समय उत्तर देना जरूरी नहीं है। सवाल गहरा है। फिर एक बार और मिलेंगे, तब अपनी राय बताना।''

अगले दस-बारह दिनों का वर्णन नहीं किया जा सकता। भाई साथ ही रहते थे। इनके व्यवहार में आ रहे बदलाव वे देख ही रहे थे। राजेन्द्र बाबू ने कोर्ट जाना बंद कर दिया था। न ठीक से खाते-पीते, न किसी से मिलते-जुलते थे। फिर एक दिन हिम्मत जुटाई। एक पत्र, काफी बड़ा पत्र, भाई को लिखा और घर छोड़ने की आज्ञा मांगी। पत्र तो लिख दिया, पर सीधे उन्हें देते नहीं बना। सो एक शाम जब भाई टहलने के लिए गये थे, तब उसे उनके बिस्तरे पर रख खुद भी बाहर टहलने चले गये।

भाई ने लौटकर पत्र देखा। और अब खुद राजेन्द्र बाबू को तलाशने लगे। जब वे बाहर मिल गये तो भाई बुरी तरह से लिपट कर रोने लगे। राजेन्द्र बाबू भी अपने को रोक नहीं पाये। दोनों फूट-फूट कर रोते रहे। ज्यादा बातचीत की हिम्मत नहीं थी, फिर भी तय हुआ कि कलकत्ता से गांव जाना चाहिए। मां, चाची और बहन को सब बताना होगा।

राजेन्द्र बाबू को अब लग गया था कि देश-प्रेम और घर-प्रेम में घर का वजन ज्यादा भारी पड़ रहा है, वे इतनी आसानी से इस प्रेम बंधन को काट नहीं पायेंगे। गोखलेजी अभी वहीं थे। राजेन्द्र बाबू एक बार और उनसे भेंट करने गये। सारी परिस्थिति बतायी। गोखलेजी ने भी उन्हें पाने की आशा छोड़ दी।

गांव पहुंचने का किस्सा तो और भी विचित्र है। चारों तरफ रोना-धोना। बची-खुची हिम्मत भी टूट गयी थी। वे जैसे थे वैसे ही बन गये। फिर से लगा कि पुरानी जिन्दगी पटरी पर वापस आने लगी है।

पर उस दिन तो आकाशवाणी हुई थी। वह झूठी कैसे पड़ती? यही वकालत उन्हें आने वाले दिनों में, पांच-छह बरस बाद चंपारण ले गयी। वहां उन पर, उनके जीवन पर नील का रंग चढ़ा। नील का रंग यानी गांधीजी के चंपारण आंदोलन का रंग। यह रंग इतना चोखा चढ़ा कि वह फिर कभी उतरा ही नहीं।

गांधी रंग में रँगे राजेन्द्र बाबू बिना किसी पद की इच्छा के देश भर में घूमते रहे और सार्वजनिक जीवन के क्षेत्र में जितनी तरह की समस्याएं आती हैं, उनके हल के लिए अपने पूरे मन के साथ तन अर्पित करते रहे, और जहां जरूरत दिखी वहां धन भी जुटाते-बांटते रहे।

उन समस्याओं की, उन विषयों की गिनती गिनाना कठिन काम है। आज तो हम दो विषयों पर, दो समस्याओं पर ही कुछ बातें करेंगे। ये हैं बाढ़ और अकाल। पानी के स्वभाव के ये दो छोर हैं। एक में, बाढ़ में चारों तरफ पानी ही पानी है और दूसरे में, हर कहीं पानी का अभाव ही अभाव है। राजेन्द्र बाबू ने इनमें से जो भी समस्या सामने आयी, बाकी हाथ के कामों को गौण मानकर सबसे पहले इन्हीं पर ध्यान दिया।

लेकिन इसके विस्तार में जाने से पहले हम जरा आज का संदर्भ भी दुहरा लें।

पांच राज्यों में चुनाव हो रहे हैं। आये दिन हम देखते हैं, किसी को किसी राजनैतिक दल ने अपना उम्मीदवार नहीं बनाया तो उसने गुस्से में आकर दल छोड़ दिया; किसी ने निराश होकर आत्महत्या कर ली तो किसी ने उस दल की ऐसी बखिया उधेड़ दी, उसके इतने सारे दोष, अवगुण गिना डाले कि सुनने-पढ़ने वाले को अचरज होने लगे कि ये अब तक उस दमघोटू संसार में सांस कैसे ले रहे थे। इसके पीछे एक धारणा यह बन गयी है कि मुझे कोई पद नहीं मिलेगा तो देश की सेवा कैसे हो पायेगी मुझसे। इस विचित्र धारणा को पालने-पोसने और आगे बढ़ाने में सारे दल—उनके सदस्य धर्म, लिंग, जाति, अगड़े-पिछड़े सभी में गजब की सहमति दिखती है। ऐसे में हमें राजेन्द्र बाबू के कुछ विचार आज एक बार फिर दुहरा लेने चाहिए।

यह प्रसंग आज से कोई 93 बरस पहले का है। संयोग से तब भी महीना नवंबर का ही था। अवसर था कौंसिल और असेम्बली के चुनावों का। छोटी-छोटी बातों पर तब के बड़े-बड़े नामों तक में मतभेद ही नहीं, मनभेद के भी कड़वे किस्से सामने आने लगे थे। क्या ऐसी ही नींव पर, कमजोर नींव पर आजादी के बाद की दलगत राजनीति का महल नहीं बन रहा था?

राजेन्द्र बाबू ने उस समय अपना मन मजबूत कर 'देश' नामक अखबार में एक लेख लिखा था। उसे उन्हींके साथियों ने पसंद नहीं किया था। उन्हींके शब्दों को यहां दुहरा लेना चाहिए : ''जब देश के स्थान पर हम किसी जाति-विशेष अथवा धर्म-विशेष अथवा दल-विशेष को बिठाना चाहते हैं, तब इस तरह की लड़ाई हुए बिना नहीं रह सकती।

''देश सेवकों के लिए एक ही रास्ता है कि कम-से-कम तब तक, जब तक देश पूर्णरूपेण स्वतंत्र नहीं हो जाता, वे किसी स्थान, पद अथवा प्रतिष्ठान के लिए लालायित न हों और केवल सेवा को ही ध्येय बनाकर काम करते जाएं।'' इस लेख में वे आगे लिखते हैं : ''मैं इसको प्रवंचना मात्र मानता हूं, जब कोई यह सोचता और कहता है कि सेवा करने के लिए उसे किसी पद विशेष की आवश्यकता है तथा उस पद के बिना वह सेवा कर ही नहीं सकता।''

इस ऐतिहासिक लेख के अंत में वे कहते हैं : ''सेवक के लिए हमेशा जगह खाली पड़ी रहती है। उम्मीदवारों की भीड़ सेवा के लिए नहीं हुआ करती। भीड़ तो सेवा के फल के बँटवारे के लिए लगा करती है। जिसका ध्येय केवल सेवा है, सेवा का फल नहीं है, उसको इस धक्का-मुक्की में जाने की और इस होड़ में पड़ने की कोई जरूरत नहीं है।''

जमीन पर यह सब हो रहा था और उधर आसमान से भी एक भयानक विपत्ति उतर आयी थी। आश्विन के महीने में बिहार के छपरा जिले में एक दिन घनघोर बरसात हुई। चौबीस घंटों में लगभग छत्तीस इंच वर्षा हुई। नतीजा यह हुआ कि पूरा जिला भयानक बाढ़ में डूब गया। वहां के सरकारी कर्मचारियों ने लोगों की इस मुसीबत में बहुत ही उदासीनता और उपेक्षा का भाव दिखाया। तब आज की तरह ढेर सारे अखबार, दिन-रात निरर्थक खबरें बहाने वाले ढेर सारे टेलीविजन चैनल तो थे नहीं। पर जो भी थोड़े से अखबार छपते थे, सभी ने यह बात लिखी कि जब लोग, घर, गांव, खेत, मवेशी पानी में डूब रहे थे, त्राहि-त्राहि पुकार रहे थे, ऐसे में भी कुछ अधिकारी-कर्मचारी नावों में चढ़कर 'झिरझिरी' खेल रहे थे।

झिरझिरी एक तरह से लुका-छिपी का खेल होता है। डूबते लोगों को, यहां तक कि स्त्रियों और बच्चों को भी बचाने में इन अधिकारियों ने कोई मदद नहीं की। लोग डूबते रहे, प्रशासन लुका-छिपी ही खेलता रहा। ऐसी भयंकर परिस्थिति में एक अंग्रेज न्यायाधीश और एक भारतीय उपन्यायाधीश ने खूब मदद की लोगों की। राजेन्द्र बाबू जैसे शालीन व्यक्ति अपनी आत्मकथा में उस दिन का वर्णन करते हुए कहते हैं कि कलेक्टर और पुलिस के अफसर तथा डिप्टी मजिस्ट्रेट 'टस-से-मस' नहीं हुए। सरकार के ऐसे घृणित व्यवहार को लेकर अगले दिन बाढ़ के पानी के बीच ही छपरा में एक विशाल सार्वजनिक सभा हुई और उसमें सरकार की खुलेआम निन्दा की गयी और साथ ही मदद देने आगे आये लोगों की खूब प्रशंसा भी हुई और उन सबके प्रति कृतज्ञता प्रकट की गयी थी। देहातों का हाल तो और भी बुरा था। उन दिनों छपरा से मशरक तक जाने वाली रेल

लाइन के कारण बाढ़ का सारा पानी आगे बहने के बदले एक बड़े भाग में फैल गया था और पीछे से आने वाली विशाल धारा उसका स्तर लगातार उठाती जा रही थी। लोगों को इससे बचने का एक ही रास्ता दिखा था : रेलवे लाइन काट देना और चढ़ते पानी को आगे के भूभाग में फैलने देना, ताकि यहां कुछ सांस ली जा सके।

पर कलेक्टर ने उनकी एक न सुनी। और तो और, ऐसी ही तबाही मचा रही अन्य रेलवे लाइनों पर सशस्त्र पहरा बिठा दिया गया था। सीवान के पास एक ऐसी ही जगह बहुत पानी जमा हो गया था। गांव वालों ने तब खुद ही उस रेल लाइन को काटना तय कर लिया। पर सामने सशस्त्र पुलिस देख उनकी हिम्मत न पड़ी। राजेन्द्र बाबू इसका वर्णन करते हुए लिखते हैं : ''कष्ट सहते गये लोग। पर जब वह बर्दाश्त से बाहर हो गया तो दो-चार आदमी कंधे पर कुदाल रखकर पानी में तैरते हुए रेल लाइन की तरफ बढ़े। पुलिस ने उन्हें देखा और धमकाया। उन्होंने जवाब दिया कि पानी में डूब कर तो हम मर ही रहे हैं और तुम लाइन नहीं काटने देते। अब तक हमने बर्दाश्त किया। अब और बर्दाश्त नहीं कर सकते। मरना दोनों हालत में है, डूब कर मरें या गोली खाकर मरें। हमने निश्चय कर लिया है कि गोली खाकर मरना बेहतर है। हम लाइन काटेंगे, तुम गोली मारो।'' बहते पानी में वे बहादुर लोग तैरते हुए मजबूत बांध की तरह उठी हुई उस रेल लाइन पर अपने दृढ़-निश्चय से कुदाल चलाते गये। पुलिस की हिम्मत नहीं हुई गोली चलाने की। लाइन अभी थोड़ी-सी ही कट पायी थी कि पीछे भर रहे पानी की ताकत ने लोगों के संकल्प में साथ दिया, और लाइन भड़ाक से टूटी तथा विशाल बाढ़ का पानी उसे किसी तिनके की तरह अपने साथ न जाने कहां बहा ले गया। पीछे के अनेक गांव पूरी तरह से डूबने से बच गये थे। बाद में पुलिस वालों ने भी रिपोर्ट में यही लिखा कि बाढ़ के दबाव से ही रेल लाइन कट गयी थी। इस सारी विपत्ति में राजेन्द्रबाबू और वे जिस दल से जुड़े थे, उसके अनगिनत कार्यकर्ताओं ने दिन-रात काम किया था। छपरा की उस बाढ़ में किसी बड़े अधिकारी ने यहां तक कह दिया था कि ये सारी शिकायतें लेकर मेरे पास क्यों आये हो, जाओ, गांधी के पास जाओ। और गांधी का मतलब कांग्रेस के लोग, और उसमें भी राजेन्द्र बाबू होता था।

इन सब दुखद प्रसंगों से राजेन्द्र बाबू ने देखा था कि बाढ़ और साथ ही अकाल अकेले नहीं आते। इनसे पहले समाज में और भी बहुत कुछ ऐसा होता है जो होना नहीं चाहिए। यह सब कभी धीरे-धीरे तो कभी बड़ी तेजी से होता है। गति जो भी हो, समाज के नीति निर्धारकों, संचालकों और नेतृत्व का ध्यान इन बातों की तरफ जा नहीं पाता और फिर बाढ़ या अकाल सामने आ खड़े होते हैं।

बुरे कामों की बाढ़ आ जाया करती है। बिना पानी का स्वभाव समझे विकास के नाम पर कई तरह के काम होते रहते हैं। यह किसी एक कालखंड की बात नहीं है। दुर्भाग्य से सब समय में ऐसी गलतियां दुहराई जाती रहती हैं। तो एक तरफ प्रकृति, पर्यावरण के खिलाफ ले जाने वाले कामों की बाढ़ आ जाती है, तो दूसरी तरफ अच्छे कामों का अकाल पड़ने लगता है; अच्छे विचारों का अकाल पड़ने लगता है।

राजेन्द्र बाबू के जमाने में उन इलाकों में अंग्रेजी की व्यापारिक नीतियों या कहें अनीतियों के कारण बड़ी तेजी से रेल की लाइनें बिछाई गयी थीं। रेल लाइन उनके व्यापार और शासन के लिए भी बड़ी खास चीज बन गयी थी। इसलिए उसे आसपास की जमीन से ऊंचा उठाकर रखना जरूरी था। आज लोग इस बात को भूल चुके हैं कि कभी हमारे देश में फैल रहा रेल व्यवस्था का यह जाल अंग्रेज सरकार के भी हाथों में नहीं था। वह कुछ निजी अंग्रेज कंपनियों की जेब में था।

खुद राजेन्द्र बाबू अपनी आत्मकथा में इस दुखद प्रसंग में लिखते हैं कि ''रेल-लाइनों के कारण बाढ़ की भयंकरता बढ़ जाती है। अपने सूबे में पिछले तीस बरसों में, जितनी बड़ी और भयंकर बाढ़ें आयी हैं, सबका मुझे काफी अनुभव है। मेरा यह दृढ़-विचार है कि रेलवे लाइन और डिस्ट्रिक्ट कोर्ट की तथा दूसरी ऊंची सड़कें बाढ़ के कारणों में प्रमुख हैं। यदि इनमें जगह-जगह काफी संख्या में चौड़े पुल बने रहते तो हालत ऐसी न होती।...पर यहां तो रेल की कंपनियों के मुनाफे पर ही अधिक ध्यान रखा जाता है। उनको पुल बनवाने के लिए मजबूर नहीं किया जाता, लाइन काटना तो दूर की बात है।...बी. एन. डब्ल्यू. रेलवे ने इस मामले में बहुत कंजूसपन दिखलाया है। यद्यपि अब उसमें कई जगह पुल बने हैं, तथापि अब भी बहुत से ऐसे स्थान हैं, जहां पुल की जरूरत है। उसने जो पुल बनवाये हैं, वे जनता के कष्ट दूर करने के खयाल से नहीं अपने मुनाफे के खयाल से; क्योंकि जब तक केवल जनता के कष्ट की बात रही, एक न सुनी गयी; पर जब प्रकृति ने लाइन को इस तरह तोड़ा कि महीनों रेल चलना बंद हो गया, तो उसने मजबूरन कई पुल बनवा दिये।''

शेष अगले अंक में...

विश्व व्यापार—एक युद्ध

❑ डॉ. कृष्णस्वरूप आनन्दी

एक सदी पहले लियो टॉलस्टाय ने कहा था—धनी लोग गरीबों के लिए सब कुछ करेंगे, सिर्फ उनकी पीठ से नहीं उतरेंगे। महान रूसी दार्शनिक ने नागरिक समाज के लिए जो बात कही थी, आज वह वर्तमान अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था के लिए भी लागू हो रही है। उत्तर के धनी देश दक्षिण के गरीब देशों पर लादे अपने आधिपत्य को स्वेच्छा से नहीं छोड़ेंगे।

जिन्हें आज तीसरी दुनिया के देश या विकासशील देश कहा जाता है, वे 500 साल पहले दुनिया के अन्य विकसित देशों की तरह खुशहाल थे। 500 साल पहले यूरोप के दो लोगों—कोलम्बस और वास्को-द-गामा की ऐतिहासिक समुद्री यात्राओं ने दुनिया का नक्शा बदल दिया। इन यात्राओं से पहले यूरोप के लोगों के दिमाग में दो अजीबोगरीब धारणाएं थीं—पहली, यह कि यूरोप के बाहर जो लोग बसते हैं, वे जंगली हैं, बर्बर हैं; और दूसरी, यह कि इन देशों में सोना-चांदी भरा पड़ा है। कोलम्बस ने यूरोपवासियों के लिए अमरीका का द्वार खोल दिया। उसकी यात्रा के बाद अपनी सरकार का चार्टर लेकर पिजार्रो वहां गया, अमेरिकी देशों की भारी लूट की और उन्हें सभ्य बनाने के लिए उनका धर्म-परिवर्तन किया। माया, इंका और एजटैक जैसी फूलती-फलती सभ्यताओं को नष्ट किया गया, वहां के लोगों को मारा गया और यूरोप के लोग दक्षिणी और उत्तरी अमेरिका में बस गये। इस दौरान वे इतनी धन-दौलत वहां से लूट कर लाये कि यूरोप में औद्योगिक क्रांति की भूमिका बन गयी।

यूरोप की औद्योगिक क्रांति ने यूरोपवासियों, खासतौर से पश्चिमी यूरोप के देशों के हाथ में ऊर्जा की नयी प्रौद्योगिकी दे दी, जिसके बल पर उन्होंने नये-नये कारखाने खोले। इन कारखानों के लिए कच्चे माल की खोज में यूरोप के लोग अमरीका के अलावा अफ्रीका और एशिया में निकले। बंदूक-नाव नीति (Gun-boat policy) अपनाकर व्यापार के साथ-साथ इन देशों में उन्होंने सारे हथकंडे और अनैतिक तरीके अपनाकर अपने उपनिवेश कायम करना शुरू कर दिया। यह सिलसिला कोई ढाई-तीन सौ साल पहले शुरू हुआ और अठारहवीं व उन्नीसवीं सदी में अपने चरम उत्कर्ष पर पहुँच गया। उपनिवेशों में क्रूर हिंसा के बल पर जो व्यापक शोषण हुआ, उससे यूरोप के पूंजीवाद की जड़ें मजबूत हुईं।

वास्को-द-गामा 1498 में भारत आया। उसकी यात्रा से यूरोप के लोगों के लिए भारत का समुद्री मार्ग खुल गया। व्यापार और समुद्री डकैती से अकूत धन-दौलत और बेशकीमती साजो-सामान, कच्चे माल के रूप में संसाधन इस देश से यूरोप जाने लगे। इस सिलसिले को आगे बढ़ाया और पुख्ता किया इंग्लैंड, फ्रांस और हालैण्ड की ईस्ट इंडिया कंपनियों ने। भारत में अपना व्यापार बढ़ाने और उसके कच्चे माल की उपलब्धता सुनिश्चित करने की दृष्टि से यहां अपना राज्य कायम करने के लिए इन कंपनियों में आपस में प्रतिस्पर्द्धा और लड़ाई चली, जिसमें अंग्रेज जीते; और 1757 में प्लासी की लड़ाई के बाद वे धीरे-धीरे इस देश के मालिक बनते गये।

1757 से लेकर 1947 तक लगभग 200 साल तक अंग्रेजों ने भारत को अपना उपनिवेश बनाये रखा। मुक्त व्यापार के नाम पर उन्होंने यहां के उत्पादन और व्यापार पर अपना शिकंजा कस लिया, इस देश की पूरी अर्थव्यवस्था को इंग्लैंड की अर्थव्यवस्था का उपग्रह बना डाला, यानी यहां वे कच्चे माल पैदा कराते गये, जिनकी जरूरत इंग्लैंड के कल-कारखानों में पड़ती थी। इस प्रक्रिया में भारत के अनेक अच्छे उद्योग-धंधे नष्ट हो गये। यहां की खेती उजड़ गयी, व्यापार असंतुलित हो गया। नतीजतन, इस देश में अंग्रेजों के राज में 17 बड़े अकाल पड़े, जबकि इतिहासकार बताते हैं कि भारत के पूरे ज्ञात इतिहास में कुल 31 बार अकाल पड़े हैं। सबसे ज्यादा दुःखदायी बात तो यह है कि अंग्रेजीकाल में जब-जब अकाल पड़े, तब देश में अन्न की कमी नहीं थी, उल्टे यहां से अन्न विदेशों को निर्यात किया जा रहा था। सन् 1942-43 के बंगाल के अकाल में भी ऐसी ही स्थिति थी जबकि इस अकाल ने कोई 40 लाख स्त्री-पुरुषों और बच्चों को अन्न के एक-एक दाने के लिए तड़पाकर निगल लिया था।

भारत में अंग्रेजी राज से बहुत से नुकसान हुए, पर सबसे बड़ा नुकसान यह हुआ कि इस देश के लोगों का आत्मविश्वास टूट गया और दिमाग औपनिवेशिक (colonised mind) हो गया। आजादी की लड़ाई के दौरान, विशेषतः गांधीजी के नेतृत्व में फिर से स्वदेशी, स्वालंबन के विचार समाज में जाग्रत हुए और आजादी के बाद लगभग दो दशक तक भारत की आर्थिक नीतियों में इन विचारों की कुछ झलक दिखायी देती थी। आयात प्रतिस्थापन नीति (import substitution policy) चली, देश अपने पैरों पर कैसे खड़ा हो, इसके लिए आर्थिक नीतियां बनीं, उद्योग और खेती की योजनाएं संचालित की गयीं।

कॉरपोरेट-नीति बहुराष्ट्रीय उप-निवेशवाद का उदय : इधर भारत में आजादी के बाद अपने ढंग से आर्थिक विकास करने की कोशिश हो रही थी, उधर उत्तर के वे

देश, जो कभी यहां राज करते रहे थे, अपनी योजनाएं बनाने में लगे थे। शेर जब एक बार आदमखोर हो जाता है, एक बार उसके मुँह जब आदमी का खून लग जाता है तब वह फिर दूसरे जानवरों का शिकार नहीं करता, बल्कि आदमी को शिकार बनाने की खोज में लगा रहता है। ठीक उसी तरह उत्तर के उपनिवेशवादी देशों को एक बार लूट का खून मुँह में लग गया था, फिर उसके बिना उन्हें चैन नहीं पड़ता था। इन तथाकथित देशों (जो दुनिया की लूट से विकसित बने हैं) की आबादी दुनिया की कुल आबादी की मात्र 15 से 20 प्रतिशत है, पर वे दुनिया के 80 से 85 प्रतिशत संसाधनों का उपभोग करते हैं। इनके अपने देश में तो इतने संसाधन हैं नहीं। साम्राज्यों द्वारा थोपे गये उपनिवेशवाद के दौर में ये संसाधन इन्हें भारत जैसे देशों से मिल जाते हैं। दूसरे महायुद्ध के बाद जितने उपनिवेश थे, वे धीरे-धीरे इनके हाथ से निकल कर आजाद हो गये। तब क्या किया जाए? एक तरीका तो यह है कि ये देश अपना उपभोग कम करें। पर इसके लिए वे किसी कीमत पर तैयार नहीं हैं। पहले पृथ्वी सम्मेलन (रियो द जेनेरो, 1992) में पृथ्वी का कैसे विनाश हो रहा है, इस पर चर्चा चल रही थी तो कोई बोल बैठा, अन्य कारणों के साथ-साथ एक कारण यह भी है कि उत्तर के देश पृथ्वी के संसाधनों का अधिक उपयोग कर रहे हैं, उस पर रोक लगानी होगी। तत्कालीन अमरीकी राष्ट्रपति जार्ज बुश (सीनियर) सम्मेलन में मौजूद थे। इतना सुनते ही उठ खड़े हुए और चिल्लाकर बोले, "Our life style is not for negotiation." (हमारी जीवनशैली पर आप बात नहीं कर सकते) यानी हम 15 प्रतिशत आबादी वाले लोग पृथ्वी के 85 प्रतिशत संसाधनों का उपभोग करते रहेंगे, आप बोल नहीं सकते।

ये संसाधन निर्बाध गति से भारत जैसे विकासशील देशों से उत्तर के विकसित देशों तक पहुंचते रहे, इसके लिए कुछ तो करना ही होगा। अमेरिका के समाजकर्मी जेस जैक्सन ने ठीक ही कहा है :

"They no longer use ropes and bullets, but they are now using World Bank, IMF and WTO." (वे अब रस्सी और गोलियां इस्तेमाल नहीं कर रहे हैं, बल्कि वे अब विश्वबैंक, मुद्राकोष और डब्ल्यू. टी. ओ. का सहारा लेते हैं।)

अब पुराना राज्य उपनिवेशवाद तो चल नहीं सकता क्योंकि दुनिया की परिस्थितियां बहुत बदल गयी हैं, पर बिना उपनिवेश कायम किये हुए संसाधन मिलेंगे भी तो कैसे? इसके लिए इन उपनिवेशवादी ताकतों ने एक नये प्रकार का उपनिवेशवाद कायम किया है, जिसे हम 'बहुराष्ट्रीय उपनिवेशवाद' कहते हैं। इसे स्थापित करने के लिए दुनिया में, खासतौर से उत्तर के देशों में 1981-82 में जो भारी मंदी आयी, उसने रास्ता बना दिया।

इतिहास का यह एक कटु सत्य है कि जब-जब दुनिया में भारी मंदी का दौर आया, तब-तब उस पर काबू पाने का एक ही उपाय निकला और वह था विश्वयुद्ध। 1929-30 की महामंदी ने यूरोप, अमेरिका सहित पूरी दुनिया को झकझोर दिया था, विश्व अर्थव्यवस्था बैठ गयी थी। इस मंदी को दूर किया द्वितीय महायुद्ध ने। इससे पहले 1893-94 में भी दुनिया में भारी मंदी फैली थी, जिसका निराकरण हुआ पहले विश्वयुद्ध से।

सन् 1981-82 में फिर से दुनिया में भारी मंदी आयी। दुनिया के तीन आर्थिक महाबली संयुक्त राज्य अमरीका, यूरोपीय संघ और जापान भी इस मंदी से अछूते नहीं रह सके। इन देशों में वृद्धि दर शून्य के आसपास पहुंच गयी। जापान किसी तरह अपनी वृद्धि दर को दो-ढाई फीसदी पर बनाये रहा। इस मंदी का प्रमुख कारण औद्योगिक देशों का हथियार-उद्योग है। इस मंदी से निजात पाने के लिए फिर विश्वयुद्ध छिड़े, इस विचार से ही ये देश कांप उठते थे क्योंकि दूसरे महायुद्ध की विनाशलीला को ये भूले नहीं थे। पर बिना विश्वयुद्ध के मंदी पर काबू कैसे हो? उस समय के अमरीकी राष्ट्रपति रोनाल्ड रीगन और ब्रिटेन की प्रधानमंत्री मार्गरिट थैचर ने एक नये प्रकार के विश्वयुद्ध की योजना बनायी जो मैदानों में नहीं, बाजारों में लड़ा जाने वाला था। वाशिंगटन कांसेंसस (आम राय) नाम से प्रसिद्ध इस योजना का मूल उद्देश्य था विकासशील देशों के बाजारों को औद्योगिक देशों के उत्पादों के लिए खुलवाना, जिससे इन विकसित देशों की मंदी दूर हो सके। इस आम राय के मूल तत्त्व हैं—भूमंडलीकरण, उदारीकरण, निजीकरण, विनियमीकरण (डिरेग्यूलेशन), सब्सिडी में कटौती, मुक्त बाजार आदि।

1981-82 से शुरू हुए इस विश्व व्यापार युद्ध में तीन प्रमुख हथियार इस्तेमाल किये गये—कर्ज, व्यापार और सूचना प्रौद्योगिकी। तीसरी दुनिया के देशों पर कर्ज का भारी बोझ लदा था। सत्तर के दशक में पेट्रोल के दाम दो बार में आठ गुने बढ़ जाने से यह कर्ज और भी बढ़ गया था। कर्ज से मुक्ति दिलाने के बहाने विकसित देशों ने विश्व बैंक और अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष का इस्तेमाल किया। इन अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं पर अमरीका और यूरोप का प्रभुत्व है। इन संस्थाओं के माध्यम से एक कार्यक्रम लागू कराया गया जिसे ढांचागत समायोजन कार्यक्रम (Structural Adjustment Programme) का नाम दिया गया। नतीजतन इन देशों की अर्थव्यवस्था और बाजार विकसित देशों की बहुराष्ट्रीय कंपनियों, बैंकों और फार्मों के लिए खुल गये।

इस विश्व व्यापार युद्ध को सर्वव्यापी और निर्णायक बनाने में सबसे अहम भूमिका अदा की है, व्यापार ने। 'व्यापार के माध्यम से विकास' का नारा दिया गया। व्यापार से जुड़े मसलों को सुलझाने के नाम पर गैट (जनरल एग्रीमेंट ऑन टैरिफ्स एंड ट्रेड) वार्ता के लिए 1986 से जो आठवां और उरुग्वे चक्र शुरू हुआ, उसमें वे नये मुद्दे विकसित देशों के दबाव से शामिल कर लिये गये जिनका व्यापार से कोई सीधा सरोकार नहीं था। ये मुद्दे थे—बौद्धिक संपदा का अधिकार, पूंजी निवेश, खेती, सेवा (सर्विसेज)। आठ साल की जद्दोजहद के बाद विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यू टी ओ) 1995 में स्थापित हुआ जो कानूनी रूप से वाशिंगटन आम राय की नीतियां लागू करने की अंतर्राष्ट्रीय संस्था बन गया। विश्व व्यापार युद्ध में विकसित देशों की यह बड़ी विजय थी। पिछले दस सालों में इस संगठन के जरिये न केवल तीसरी दुनिया के बाजार खुलवा लिये गये, वरन इन देशों के कानून भी डब्ल्यू टी ओ के निर्देश पर बदलवाये गये।

पिछले कुछ दशकों में सूचना प्रौद्योगिकी में जो क्रांति हुई है, उसका भरपूर लाभ इस व्यापार युद्ध में लिया गया है। पश्चिमी दृष्टि और संस्कृति परोस कर विकासशील देशों के मानस को (जो पहले से ही उपनिवेशकाल के दौरान गुलामी में जकड़ा हुआ था) फिर से गुलाम बनाया जा रहा है। पश्चिमी देशों के बहुराष्ट्रीय निगम न केवल पूंजी, तकनीक ला रहे हैं, बल्कि अपने साथ संस्कृति भी ला रहे हैं। अमेरिका, यूरोप, कनाडा, आस्ट्रेलिया के विश्वविद्यालय अपनी शिक्षा योजनाएं चला रहे हैं और डिग्रियां बांट रहे हैं।

इस व्यापार युद्ध में विकसित देशों की जीत हुई है। वे जो चाहते थे, सो उन्होंने करा लिया। भारत में यह हमला अस्सी के दशक से शुरू हो गया था पर 1991 से विश्वबैंक और मुद्राकोष के दबाव में भारत ने घुटने टेक दिये। भारत ने 200 साल तक अंग्रेजों के राज्य उपनिवेशवाद का दंश भोगा था। आजादी के 30-40 साल बाद इस व्यापार युद्ध में हार जाने से फिर वह कॉरपोरेट उपनिवेशवाद के जाल में फँस गया है।

1991 में भारत सरकार के सामने विदेशी मुद्रा की कमी का संकट पैदा हो गया था। उससे निजात पाने के लिए उसने विश्व बैंक और मुद्राकोष से कर्ज लिया। मौका पाते ही विश्व बैंक और मुद्राकोष ने भारत सरकार पर शर्तें लगा दीं। ढांचागत समायोजन कार्यक्रम (एस. ए. पी.) के तहत भूमंडलीकरण, उदारीकरण, निजीकरण, विनियमन आदि नीतियां भारत सरकार को मंजूर करनी पड़ीं जिससे भारत की अर्थव्यवस्था और उसका बाजार विदेशी बहुराष्ट्रीय कंपनियों, बैंकों और फर्मों के लिए चरागाह बनते गये। डब्ल्यू. टी. ओ. के बन जाने से इस प्रक्रिया पर कानूनी मोहर लग गयी। इस प्रकार विश्वबैंक, मुद्राकोष आदि के माध्यम से 'कर्ज का हथियार' और डब्ल्यू टी ओ के माध्यम से 'व्यापार का हथियार' पश्चिम की ताकतों ने इस्तेमाल किया और व्यापार युद्ध में भारत के ऊपर 1991 के बाद उन्होंने विधिवत् हमला शुरू कर दिया। इस युद्ध की खास बात यह रही कि हमलावर देशों ने अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं के माध्यम से दुनिया में ऐसा वातावरण बना दिया कि भारत जैसे देश के लोगों को यह हमला महसूस ही नहीं हुआ। इस हमले को विकास समझ लिया गया। इसमें सूचना तकनीक में हुई क्रांति का भरपूर इस्तेमाल बहुराष्ट्रीय हमलावरों ने किया।

भारत के लिए यह अत्यन्त दुर्भाग्य की बात है कि इस हमले को रोकने और हमलावरों से टक्कर लेने के लिए कोई भी सरकार हिम्मत नहीं जुटा सकी। उलटे, सरकारों ने इन हमलावरों के एजेंट का काम किया। 1991 में भारत सरकार के वित्तमंत्री विश्वबैंक में काम करने वाले अधिकारी थे। उन्होंने जिन नयी आर्थिक और औद्योगिक नीतियों की घोषणा की, वे दरअसल विश्वबैंक और मुद्राकोष के एस. ए. पी. का ही भारतीय संस्करण था। इससे उद्योग क्षेत्र बाहरी बहुराष्ट्रीय कंपनियों के लिए खुल गया। 1995 से डब्ल्यू. टी. ओ. के प्रावधान धीरे-धीरे लागू होने लगे जिससे हमारे पेटेंट कानून बदल गये, पूंजी का क्षेत्र विदेशी निवेशकों के लिए खुलता गया। अब सेवा, कृषि और खुदरा कारोबार के क्षेत्रों में भी विदेशी कंपनियां तेजी से घुस रही हैं। हमारी कृषि-नीति, जल-नीति, बीज-नीति तथा अन्य वित्तीय नीतियां बदली गयी हैं और लगातार बदली जा रही हैं। ❑

त्याग

त्याग से प्रसन्नता न हो तो वह किसी काम का नहीं। त्याग करने और मुँह फुलाने का मेल नहीं बैठता। वह मानवता का घटिया नमूना होगा, जिसे अपने त्याग के लिए सहानुभूति की जरूरत हो। बुद्ध ने सर्वस्व इसलिए त्याग दिया कि उनसे उसके बिना रहा नहीं गया। कोई चीज रखना उनके लिए आत्म-पीड़ा की बात थी। लोकमान्य इसलिए गरीब बने रहे कि उन्हें सम्पत्ति रखना असह्य मालूम होता था। हम तो अभी तक त्याग के साथ खिलवाड़ कर रहे हैं। असलियत तो अभी आनी बाकी है।

यंग इंडिया, 25-6-'25 **–मो. क. गांधी**

जल प्रबंधन पर कोई ठोस नीति नहीं

❑ संदीप सिंह सिसोदिया

प्रकृति को पहुंचाई गयी सबसे स्पष्ट मानवजनित हानि मध्य एशिया की जमीनों से घिरे 'अराल सागर' में देखी जा सकती है। जल कुप्रबंधन के चलते अराल सागर आज 'पर्यावरण ह्रास' या 'पर्यावरण क्षरण' के एक अंतर्राष्ट्रीय प्रतीक के रूप में कुख्यात हो चुका है।

1960 के दशक में जनसंख्या वृद्धि के काण बड़े पैमाने पर शुरू हुई सिंचाई परियोजनाओं के कारण अराल सागर में गिरने वाली नदियों आमू दरिया और साइर दरिया के जल को जल प्रबंधन नीति के अंतर्गत खेतों में सिंचाई के लिए मोड़ दिया गया। इसके फलस्वरूप आने वाले 40 सालों में अराल सागर का 90 प्रतिशत जल खतम हो गया तथा 74 प्रतिशत से अधिक सतह सिकुड़ गयी।

1960 के बाद के दशकों में सूखे के कारण और पानी मोड़ने के लिए बनायी गयी नहरों के कुप्रबंधन के चलते अराल सागर की तट में भी काफी कमी देखी गयी; जहां बड़ी नौकाएं चलती थीं, वहां रेगिस्तान नजर आने लगा था। सूखी रेत में खड़ी परित्यक्त नौकाओं और सिकुड़ती तट रेखा की तस्वीरें अंतर्राष्ट्रीय मीडिया में छपने के बाद वैज्ञानिकों, राजनीतिज्ञों, पर्यावरण संस्थाओं व कार्यकर्ताओं का ध्यान इस ओर गया पर तब तक बहुत देर हो चुकी थी।

जिस जगह कभी समंदर की लहरें हिलोरें मार रही थीं, वहां आज धूल उड़ रही है। इतना ही नहीं, सिकुड़ते समुद्र और सूखती झीलों से क्षेत्र की स्थानीय अर्थव्यवस्था और पर्यावरण तबाह हो गया और आसपास के पारिस्थितिक तंत्र पर भी गंभीर असर हुआ।

सूखते तलछट से निकलने वाली खारी धूल 300 वर्ग किमी. तक फसलों को क्षतिग्रस्त कर रही है। यह धूल कीटनाशकों के भारी प्रयोग के बाद इतनी नुकसानदेह हो चुकी है कि क्षेत्र के पशुओं व मानवों के स्वास्थ्य पर भी गंभीर असर डाल रही है। सागर के आसपास के क्षेत्रों में जल की गुणवत्ता इतनी घटी है कि विशेषज्ञों ने स्थिति का वर्णन 'आपदा', 'तबाही' और 'त्रासदी' के रूप में किया है।

ग्रेट साल्ट लेक को भी खतरा : कमोबेश कुछ ऐसा ही हाल मिसिसिपी स्थित 'ग्रेट साल्ट लेक' का भी है, जो संयुक्त राज्य अमेरिका में पश्चिम की सबसे बड़ी झील है और दुनिया में नमकीन पानी की चौथी सबसे बड़ी झील है।

मनुष्य की एक अजीब और खतरनाक आदत रही है कि वह तात्कालिक खतरे को लेकर अत्यन्त सजग हो जाता है, पर अकसर दूरगामी संकट को भांपने में नाकाम रहता है। हमें जनसाधारण को इन आसन्न कठिनाइयों को सरल और स्पष्ट रूप से समझाकर हर स्तर पर प्रयास करने होंगे।

प्रवासी जल-पक्षियों की शरणस्थली और स्थानीय तटीय पक्षियों की विशाल संख्या के लिए मशहूर यह झील आर्थिक दृष्टि से भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। नमक उत्पादन से लेकर झींगा उत्पादक क्षेत्र के कारण यहां के स्थानीय निवासियों के लिए यह झील रोजगार का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण साधन है।

पारिस्थितिक, जलवायु और जल विशेषताओं में अराल सागर से विशेष रूप से उल्लेखनीय समानताएं होने से ग्रेट साल्ट लेक को भी जल प्रबंधन, जनसंख्या वृद्धि और जलवायु परिवर्तन की संभावना जैसी उन्हीं कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है, जो अराल सागर के विनाश का कारण बनी।

चिलका को लेकर चिन्तन जरूरी : कुछ ऐसे ही खतरे भारत की सबसे बड़ी झील 'चिलका' पर भी मंडरा रहे हैं। स्थानीय आबादी के पिछड़े होने की वजह से इस झील में उपलब्ध संसाधनों का जरूरत से ज्यादा दोहन किया जा रहा है। झील का समुचित प्रबंधन न हो पाने से इस झील के पारिस्थितिक तंत्र पर विपरीत असर पड़ रहा है, जिस पर अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी चिन्ता जाहिर की जा चुकी है।

हालांकि इसकी तुलना अराल सागर को हुए पर्यावरण क्षरण से नहीं की जा सकती, पर भविष्य में जल प्रबंधन की चुनौतियों और अवश्यम्भावी खतरों को कम आंकने की प्रवृत्ति से आने वाले कुछ सालों में यह अनुमान सच साबित हो सकता है।

पर्यावरण क्षरण के चलते अराल सागर बीसवीं सदी में वैश्विक जल-समस्याओं का एक प्रतीक बन गया है। जल संसाधनों की मांग में हुई वृद्धि का सामना अब वैश्विक स्तर पर किया जा रहा है। ❑

इंडिया वाटर पोर्टल (हिन्दी)

मन के दरवाजे खुले रखिये

मन के दरवाजे इतने खुले होने चाहिए कि कहीं से भी ज्ञान मिलता है, तो लेने की सर्वदा तैयारी रहे। बच्चे के मुख से भी ज्ञान-ज्योति आ सकती है। ज्ञानी से ज्ञान-ज्योति तो मिलती ही है, लेकिन बच्चे से भी मिल सकती है। उसके लिए चित्त उत्सुक और खुला होना चाहिए।

('शुचिता से आत्मदर्शन') **–विनोबा**

समग्र एवं मजबूत हिमालय-लोकनीति

❑ सुरेश भाई

उत्तराखंड में 16-17 जून को आयी आपदा की जानकारी इलेक्ट्रॉनिक व प्रिंट मीडिया द्वारा प्रचारित की जाती रही है। इसके अलावा कई लेखकों व प्रख्यात पर्यावरणविदों ने भी आपदा के कारणों व भविष्य के प्रभावों पर सबका ध्यान आकर्षित किया। इसी को ध्यान में रखते हुए 23-26 सितंबर, 2013 को उत्तराखंड के रुद्रप्रयाग, अगस्तमुनी, ऊखीमठ, गोपेश्वर, कर्णप्रयाग, श्रीनगर, ऋषिकेश और हरिद्वार के प्रभावित गांवों व क्षेत्रों का अध्ययन एक टीम द्वारा किया गया है। इस टीम में प्राकृतिक संसाधनों पर विशेषज्ञों का एक दल जिसमें उड़ीसा स्थित *अग्रगामी* से श्रीमती विद्यादास, गुजरात में कार्यरत *दिशा* संस्था की सुश्री पाउलोमी मिस्त्री तथा कर्नाटक संस्था *इन्वायरमेंट प्रोटेक्शन ग्रुप* के श्री लियो सलडान और दिल्ली से ब्रतिन्दी जेना शामिल थी।

टीम द्वारा यहां के प्रभावित समुदायों के बारे में जानने के लिए व्यक्तिगत तथा सामूहिक स्तर पर बैठकों का आयोजन किया गया था। लगातार भारी वर्षा के कारण अध्ययन टीम के लिए यह संभव नहीं था कि द्रुत गति से प्रभावित ग्रामीणों के पास पहुँचा जा सके, और उन गांवों के जोड़ने वाले सारे पुल एवं सड़कें ध्वस्त हो चुके थे। भ्रमण के दौरान आपदा प्रभावित समुदाय के सदस्यों, पत्रकारों, विभिन्न निर्माणाधीन बांध-स्थलों पर स्थानीय लोगों के साथ बातचीत की गयी है। इस आपदा ने उत्तराखंड हिमालय की संवेदनशीलता पर पुनः लोगों का ध्यान आकर्षित किया है। *टीम द्वारा तैयार की गयी रिपोर्ट को लेकर देहरादून में हिमालय सेवा संघ नयी दिल्ली, उत्तराखंड नदी बचाओ अभियान, उत्तराखंड जन कारवां ने देहरादून में 26 नवंबर को एक बैठक आयोजित की। बैठक में रिपोर्ट के अलग-अलग अध्यायों में आपदा प्रभावित इलाकों की गहरी समस्याओं को प्रतिभागियों द्वारा शामिल करवाया गया है। इस बैठक में प्रसिद्ध गांधी विचारक सुश्री राधाबहन भट्ट, प्रो. वीरेन्द्र पैन्युली, डॉ. अरविन्द दरमोड़ा, लक्ष्मण सिंह नेगी, ब्रतिन्दी जेना, तरुण जोशी, ईश्वर जोशी, जब्बर सिंह, प्रेम पंचोली, अरण्य रंजन, इन्दर सिंह नेगी, दुर्गा कंसवाल, डॉ. रामभूषण सिंह, रमेश मुमुक्षु, जयशंकर, मदन मोहन डोभाल, सुरेश भाई, बसंत पांडेय, देवेन्द्र दत्त आदि कई सामाजिक कार्यकर्ताओं ने भाग लिया।*

रिपोर्ट की प्रस्तावना में हिमालयी सुनामी के बारे में बताया गया है। इसके दूसरे अध्याय में आपदा के परिणाम में सुनामी से हुए परिवर्तनों को रेखांकित किया गया है। इस त्रासदी में मौत एवं महाविनाश का तांडव किस तरह से हुआ है, इसके साथ ही राहत और बचाव के कार्य में व्यवस्था की उदासीनता एवं फिजूलखर्ची और सिविल सोसायटी की भूमिका के बारे में बताया गया है। रिपोर्ट के अंतिम अध्याय में इस हिमालयी सुनामी पर उत्तराखंड की आवाज को सुझाव के रूप में प्रस्तुत किया गया है कि इस आपदा से सबक लेकर उत्तराखंड में विकास की अवधारणा को बदलना होगा। विकास के जिस मॉडल पर आज तक बेतहाशा सड़कें खुदती रहीं, विद्युत परियोजनाएं भारी विस्फोटों के साथ सुरंगें खोदकर संवेदनशील पर्वतमाला को झकझोरती रहीं और नदियों के अविरल प्रवाह को जहां-तहां रोककर गांव के लोगों के लिए कृत्रिम जलाभाव पैदा किया गया, और कभी इन्हीं जलाशयों को अचानक खोलकर लोगों की जमीनें एवं आबादियां बहा दी गयीं। अब भविष्य में ऐसा विकास का मॉडल उत्तराखंड में नहीं चलेगा। इस आवाज को इस रिपोर्ट के माध्यम से यहां के लोगों ने बुलंद किया है, और इससे 40 वर्ष पूर्व भी यहां के सर्वोदय कार्यकर्ताओं की आवाज को महात्मा गांधी की शिष्या सरला बहन ने *पर्वतीय विकास की सही दिशा* के रूप में प्रसारित किया था, जिसे वर्तमान परिप्रेक्ष्य में इसी जमात की नयी पीढ़ी द्वारा *हिमालय लोकनीति* के रूप में सरकार के सामने प्रस्तुत किया था। आज पुनः आपदा के संदर्भ में इसे नये आयामों के साथ सरकार और जनता के सामने लाया गया है।

इस टीम की अध्ययन रिपोर्ट में आपदा प्रबंधन, राहत और बचाव कार्य में हुई अनियमितता पर सवाल खड़े किये गये हैं, जिसमें कहा गया है कि जलवायु परिवर्तन के दौर में आपदा के लिए संवेदनशील उत्तराखंड में विकास के नाम पर भारी अनदेखी हुई है। यदि उत्तराखंड सरकार के पास मजबूत जलवायु एक्शन प्लान होता तो इस बार की आपदा के पूर्वानुमानों को ध्यान में रखा जा सकता था और लोगों को बचाया भी जा सकता था। आपदा के बारे में वैज्ञानिकों और मौसम विभाग की सूचनाओं के प्रति लापरवाही बरती गयी है, जिसके कारण लगभग 1 लाख पर्यटक चारों धाम में फँसे रहे हैं, जिन्हें या तो भूखा रहना पड़ा या अल्प भोजन पर जीवन गुजारना पड़ा है। उत्तराखंड सरकार के पास पर्यटकों की संख्या का केवल अनुमान मात्र ही था। बताया जाता है कि पिछले पांच दशकों में आपदा का यह दिन सबसे अधिक नमी वाला दिन था।

केदारनाथ में अधिकांश तबाही हिमखंडों के पिघलने से चौराबारी ताल में भारी मात्रा में एकत्रित जल प्रवाह के कारण हुई है। इसके चलते इस तबाही में केदारनाथ में जमा हुए लोगों में भगदड़ मच गयी और हजारों लोगों की जिन्दगी चली गयी। आपदा के उपरांत केदारनाथ एवं इसके आसपास के, उपग्रह द्वारा लिये गये चित्रों के विश्लेषण से स्पष्ट हो गया है कि देश के *प्राकृतिक आपदा मानचित्र का पुनरीक्षण* करके नये सिरे से बाढ़ प्रभावित

क्षेत्रों को चिह्नित किया जाना चाहिए।

इस आपदा ने 20 हजार हेक्टेयर से अधिक कृषि भूमि तथा 10 हजार से अधिक लोगों की जिन्दगी को मलबे में तब्दील कर दिया। इसके कारण इन नदी क्षेत्रों के आसपास बसे हुए गांव के आवागमन के सभी साधन नष्ट हुए हैं। नदी किनारों के गांवों का अस्तित्व मिटने लगा है। कई गांव के निवासियों को अपनी सुरक्षा के लिए अन्यत्र पलायन करना पड़ा है।

उत्तराखंड समेत देश-विदेश के कई स्थानों से आये पर्यटकों व श्रद्धालुओं के परिवार वाले अपने लापता परिजनों को वापस घर लौटने की आस लगाये बैठे हैं। कई लोगों के शव अब तक बरामद नहीं हो सके हैं और कितने लोग कहां से थे, उसकी अंतिम सूची नहीं बन पायी है।

अध्ययन रिपोर्ट के अनुसार ब्रिटेन के उच्चायुक्त जेम्स बीमन ने अध्ययन दल को बताया है कि उन्हें जानकारी नहीं हो सकती है कि इस आपदा में कुल कितने ब्रिटिश नागरिक उत्तराखंड में थे, क्योंकि 100 से अधिक ब्रिटिश परिवारों ने इस संबंध में उच्चायोग से संपर्क करके बताया है कि इस आपदा के बाद उनके लोगों का कोई पता नहीं है। यही स्थिति नेपाली लोगों की भी है।

आपदा से पूर्व गौरीकुंड में खच्चरों की अनुमानित संख्या 8000 थी। आपदा के बाद मृत लोगों के शवों की तलाश तो जारी है लेकिन पशुओं की मृत्यु संख्या क्या है, और जो बचे हैं उनकी स्थिति क्या है, यह स्पष्ट नहीं है। अधिकांश पशु बुरी तरह जख्मी भी हुए, जो इलाज और चारा-पानी के अभाव में मरे हैं।

राहत कार्य में सरकार की ओर से बहुत देरी हुई है। 16-17 जून को आयी आपदा के बाद 21 जून को देर शाम तक 12 युवा अधिकारियों को नॉडल अधिकारी के रूप में आदेश दिये जा सके थे, जो 22 जून की रात्रि और 23 जून की सुबह तक प्रभावित क्षेत्र में पहुँच पाये थे। सवाल यह है कि आखिर यह देर क्यों हुई है? इससे कोई भी समझ सकता है कि सामान्य दिनों में जनता के कामकाज में कितनी देरी होती होगी?

उत्तराखंड में सन् 2010 से 2013 तक लगातार बाढ़, भूस्खलन, बादल फटना और इससे पहले भूकंप जैसी विनाश की कई घटनाएं होती रही हैं, फिर भी राज्य के पास पुनर्वास एवं पुनर्स्थापना नीति क्यों नहीं है?

मुआवजा राशि में बढ़ोतरी हुई है लेकिन सही पात्र व्यक्ति तक पहुँचना अभी बाकी है। उत्तराखंड सरकार द्वारा पुनर्निर्माण के लिए प्रस्तावित 13800 करोड़ में से 6687 करोड़ की राशि स्वीकृत है। इसके आगे भी केन्द्र सरकार विभिन्न स्रोतों से राज्य को आपदा से निपटने के लिए सहायता दे रही है। इतनी सहायता के बाद भी उत्तराखंड सरकार रोना-धोना कर रही है।

उत्तराखंड राज्य के लोगों ने पृथक राज्य के लिए अभूतपूर्व संघर्ष किया है। लोगों की मांग रही है कि जल, जंगल, जमीन पर गांवों को अधिकार मिले। इसी बात को लेकर चिपको, रक्षासूत्र, नदी बचाओ, सरला बहन द्वारा पर्वतीय विकास की सही दिशा और वर्तमान परिप्रेक्ष्य में हिमालयी लोकनीति ने राज्य एवं देश का ध्यान आकर्षित किया है। इसके बावजूद सरकारों की अपनी मनमर्जी ने हिमालयी क्षेत्र के पहाड़ों को उजाड़ने वाली परियोजनाओं को महत्त्व दिया है, जिसके परिणामस्वरूप आपदा को बार-बार न्यौता मिल रहा है। सुरंग आधारित जल विद्युत परियोजना, सड़कों के चौड़ीकरण से निकलने वाले मलबे ने पहाड़ों के गांव को अस्थिर बना दिया है। नदियों के उद्गम संवेदनशील हो गये हैं। अब मानवजनित घटना को रोकना ही श्रेयस्कर होगा।

प्रसिद्ध भूगर्भ वैज्ञानिक डॉ. खडग सिंह वाल्दिया का कहना है कि राज्य में संवेदनशील फॉल्ट लाइनों को ध्यान में न रखकर सड़कें बनायी जा रही हैं। यही कार्य जल विद्युत परियोजनाओं के निर्माण में हो रहा है। अधिकांश जल विद्युत परियोजनाएं भूकंप व बाढ़ के लिए संवेदनशील फॉल्ट लाइनों के ऊपर अस्थिर चट्टानों पर बन रही हैं। उनका मानना है कि भूगर्भ वैज्ञानिकों को केवल रबर स्टैम्प के रूप में इस्तेमाल किया जाता है।

आपदा से निपटने के लिए सत्ता एवं विपक्ष के नेताओं को समुदाय, सामाजिक संगठन, अभियान और आंदोलनों के साथ संवाद करने की नई राजनीतिक संस्कृति बनानी चाहिए। यह अखबारों में छपी खबरों को भी संज्ञान में लेकर राज्य की जिम्मेदारी बनती है, जिसका सर्वथा अभाव क्यों है? माननीय उच्चतम न्यायालय ने केन्द्रीय वन एवं पर्यावरण मंत्रालय को आदेश दिया कि वह एक विशेषज्ञ समिति का गठन करे जो यह सुनिश्चित करे कि उत्तराखंड की सभी निर्मित अथवा निर्माणाधीन जल विद्युत परियोजनाओं के कारण जून माह में राज्य में आयी आकस्मिक बाढ़ में क्या योगदान रहा है? इसके साथ ही सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी आदेश जारी किया कि भागीरथी और अलकनंदा नदियों पर हाल ही में प्रस्तावित 24 जल विद्युत परियोजनाओं की जांच की जाए जिनका विरोध पर्यावरण कार्यकर्ताओं तथा विशेषज्ञों द्वारा अभी जारी है। उच्चतम न्यायालय ने वन एवं पर्यावरण मंत्रालय तथा उत्तराखंड सरकार को यह भी हिदायत दी है कि वह उत्तराखंड में किसी भी नयी जल विद्युत परियोजना के लिए पर्यावरणीय स्वीकृति जारी न करें। इस आपदा में बांधों की क्या भूमिका रही, इसे पता करने के लिए विशेषज्ञ दल में राज्य सरकार के प्रतिनिधियों, भारतीय वन्य जीव संस्थान, केन्द्रीय विद्युत ऑथोरिटी, केन्द्रीय जल आयोग और अन्य विशेषज्ञों को शामिल किया जाए— ऐसा न्यायालय का आदेश था। इन आदेशों को उत्तराखंड की सरकार भूल गयी है। हर रोज नई-नई परियोजनाओं के उद्घाटन हो रहे हैं, और अब सिर्फ बजट बांटना शेष बचा है; जबकि उत्तराखंड के सामाजिक पर्यावरण से जुड़े संगठन आपदा से निपटने के लिए राज-समाज मिलकर काम करने की दिशा में दबाव बना रहे हैं। *...शेष अगले अंक में*

एक रपट

शांति, समानता और न्याय के लिए नई तालीम

''वर्तमान स्थिति पर गौर करते हैं, तो हमें दो वर्गों का बाहुल्य अधिक देखने को मिलता है—उत्पादक और उपभोक्ता। यदि समाज में बिना दृष्टि और दर्शन वाली शिक्षा व्यवस्था का विकास होगा तो ऐसे समाज में केवल 'प्रबंधक' और 'मेन्यूपुलेटर' ही पैदा होंगे। इस परिस्थिति में हमें व्यापक रूप से समाज हित में अपने शिक्षा के नजरिये और दर्शन के प्रति चिन्तन और संवेदना को विकसित करना होगा। तभी समाज में शांति, समानता और न्याय का भाव विकसित हो सकेगा; और गांधीजी की नई तालीम इस समाज की रचना करने में सक्षम है।''

उक्त विचार गुजरात विद्यापीठ के कुलनायक श्री सुदर्शन आयंगर ने अहमदाबाद से 50 किलोमीटर दूर सादरा पंचायत में नई तालीम अवधारणा पर पांच दिवसीय 'जीवन आधारित मुक्त अध्ययन स्रोत निर्माण कार्यशाला' (18 से 22 नवंबर, 2013) के शुभारम्भ समारोह में अपने स्वागत उद्‌बोधन में व्यक्त किये। कार्यशाला का आयोजन अ. भा. नई तालीम समिति, सेवाग्राम ने गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद एवं अजीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, बंगलौर के सहयोग से किया गया था। इस मौके पर नई तालीम समिति के अध्यक्ष डॉ. सुगन बरंठ, पूर्व सदस्य एन सीईआरटी के श्री सुखदेव पटेल, नई तालीम के विद्यार्थी एवं चिन्तक डॉ. अभय बंग सहित देश भर में शिक्षा के मुद्दे पर काम करने वाले शिक्षा संस्थानों के प्रतिनिधि, नई तालीम शिक्षक, पाठ्यक्रम निर्माण विशेषज्ञ, वैकल्पिक शिक्षा के काम से जुड़े प्रतिनिधि, विषय-विशेषज्ञ आदि उपस्थित थे।

कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए नई तालीम समिति के अध्यक्ष डॉ. सुगन बरंठ ने नई तालीम की चुनौतियों और कर्तव्य के बारे में कहा कि आज के संदर्भ में खुद में परिवर्तन, समूह में परिवर्तन और सृष्टि के परिवर्तनों की चुनौतियां सामने दिखती हैं। इसमें 'स्व' के विकास की चुनौती बड़ी है। आज की व्यवस्था की देन है कि जीवन के अलग-अलग हिस्से कर दिये गये हैं। हमारे सामने चुनौतियां है—भीतर में योग, सहयोग और उद्योग जैसे पहलू हमें अलग से अवगत कराने की जरूरत नहीं है, ये तो जीवन के हिस्से ही हैं। इस संदर्भ में गांधीजी ने 'हिन्द स्वराज्य' के साथ 'मंगल प्रभात' भी दिया है। इसे शिक्षण की प्रक्रियाओं के साथ ही जीने की आवश्यकता है।

कार्यशाला के दौरान सर्वोदय दर्शन के चिन्तक एवं नई तालीम विद्यालय, सेवाग्राम के पूर्व छात्र डॉ. अभय बंग ने आज के संदर्भ में नई तालीम का दर्शन प्रस्तुत किया। बहुत ही रोचक और गहने चिन्तन के साथ नई तालीम के संदर्भों को अवगत कराते हुए कहा कि जीवन ही शिक्षा है। हमारा दुर्भाग्य है कि आज की शिक्षा में जीवन के कोई मायने नहीं है। इसीलिए जीवन से जुड़े पहलुओं को हमें अलग से पढ़ाने का प्रयास किया जा रहा है। जीवन से अलग शिक्षा होती ही नहीं। हमें चाहिए कि जीवन जैसे घटित हो रहा है वहां शिक्षा को जोड़ना होगा। उन्होंने नई तालीम की व्याख्या करते हुए स्व, स्वधर्म, स्वदेश, स्वालंबन, सहयोग, स्वराज्य और स्व-शिक्षण के मायने समझाने के प्रयास किये।

कार्यशाला में पश्चिम बंगाल, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, असम, तमिलनाडु, महाराष्ट्र, गुजरात, उत्तर प्रदेश, केरल, उड़ीसा, दिल्ली, गोवा आदि राज्यों से 118 से अधिक प्रतिभागियों ने हिस्सा लिया।

संचालन नई तालीम के सचिव श्री प्रदीपदास गुप्ता ने किया। कार्यशाला को सफल बनाने में अजीम प्रेम, प्रो. सुजीत सिन्हा, नजरुल हक, सिद्धार्थ कुमार जैन, अंकित शाह, आशीष कोशी सहित गुजरात विद्यापीठ के पंचायतीराज प्रशिक्षण केन्द्र के प्रमुख श्री तेजस एवं जीवशास्त्र के प्रमुख श्री प्रदीपभाई सहित अन्य कार्यकर्ताओं का उल्लेखनीय सहयोग रहा। **–किशोर कुलकर्णी**

राजस्थान प्रदेश सर्वोदय मंडल का गठन

आमेर स्थित ग्राम भारती समिति परिसर, जयपुर में 7 दिसंबर, 2013 को श्रीमती शशि त्यागी की अध्यक्षता में संपन्न हुए राजस्थान प्रदेश सर्वोदय सम्मेलन में श्रीमती आशा बोथरा को सर्वसम्मति से प्रदेश सर्वोदय मंडल का अध्यक्ष चुना गया।

सम्मेलन में जयपुर, जोधपुर शहर, जोधपुर देहात, नागौर, सीकर तथा बांसवाड़ा आदि जिलों से कुल 52 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। प्रदेश अध्यक्ष के चुनाव के लिए सर्व सेवा संघ (अ. भा. सर्वोदय मंडल) की ओर से विशेष प्रतिनिधि के रूप में श्री महावीर त्यागी उपस्थित रहे।

सम्मेलन की अध्यक्षता कर रहीं श्रीमती शशि त्यागी ने जहां प्रदेश में श्री गोकुलभाई भट्ट, श्री सिद्धराजजी ढड्ढा, श्री जवाहर लालजी जैन, श्री पूर्णचंदजी तथा श्रीमती छगन बहन जैसे तपोनिष्ठ गांधीजनों के प्रखर नेतृत्व में चले सर्वोदय संगठन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर प्रकाश डाला, वहीं बतौर मुख्य अतिथि श्री महावीर त्यागी ने वर्तमान राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में गांधीजनों की महत्त्वपूर्ण भूमिका को रेखांकित करते हुए सक्रियता के साथ शराबबंदी के कार्य में लगने हेतु सर्वोदय कार्यकर्ताओं का आवाहन किया। **–कानाराम**

समाज संस्थावाद से मुक्त हो

❑ धीरेन्द्र मजूमदार

मैं संस्थावाद का निराकरण केवल अपने आंदोलन के लिए ही नहीं चाहता हूं। समाज की प्रगति के लिए तथा इनसान की मुक्ति के लिए मैं यह आवश्यक मानता हूं कि समाज संस्थावाद से मुक्त हो। ऐसा कहने में मैं इतिहास का इनकार नहीं करता हूं। इतिहास के प्रथम युग में जब मनुष्य-समाज ने राजा, नेता या गुरु का आविष्कार किया था, उस समय उनके सामने जो समस्याएं थीं, वे स्थानीय थीं। वे सरल होती थीं एवं थोड़े लोगों को छूती थीं। तब समाज की क्रियाशीलता को कुछ व्यक्तियों के हाथ में सौंप कर मनुष्य निश्चिंत हो सकता था। लेकिन ज्ञान-विज्ञान की प्रगति तथा मानव-चेतना के प्रसार के साथ-साथ समाज की समस्याएं जब जटिल होती गयीं, तब वे स्थानीय न रहकर व्यापक दायरे को घेरने लगीं। इधर चेतन-समाज की परिधि बढ़ती रही। तब मनुष्य व्यक्तिगत रूप से समस्याओं के समाधान तक पहुँच नहीं सकता था। तब समाज की क्रियाशीलता के लिए और बड़ी एजेंसी की आवश्यकता हुई। इसी आवश्यकता में से संस्थावाद का आविष्कार हुआ।

व्यक्तिवाद के विघटन का एकमात्र कारण समाज के क्रियाकलाप की व्यापकता ही नहीं रही, बल्कि प्रभुत्वनिष्ठा तथा भ्रष्टाचार के कारण कालक्रम से व्यक्तियों की शक्ति भी घटती गयी। उसी प्रकार आज के समाज को संसाधन देने में संस्थाएं भी असमर्थ हो रही हैं। शुरू-शुरू में संस्थाओं में जो नेतृत्व रहा है, वह बदल कर प्रभुत्व में परिणत हो गया है। शुरू में छोटी संस्थाएं थीं, जिस कारण वे लोकजीवन के साथ अधिक समरस हो सकती थीं तथा उनमें मानवीय चेतना का संचार होता रहता था। लेकिन सामाजिक आवश्यकताओं की व्यापकता के कारण जैसे-जैसे संस्थाओं का विस्तार होता गया वैसे-वैसे उनकी चेतना घटती गयी और कुल मिलाकर आज संस्थाएं भी प्रभुत्वनिष्ठ, भ्रष्टाचारी तथा जड़ हो गयी हैं। दूसरी ओर समाज की समस्याएं अति जटिल तथा उसकी चेतना सार्वजनिक हो गयी है। इसलिए आज मनुष्य की अपनी समस्याओं के समाधान के लिए सामुदायिक रूप से अपने क्रियाकलाप चलाने पड़ेंगे। अब राज्य-संस्था, कल्याण-संस्था या शिक्षण-संस्था के सहारे बैठे रहने से उसका काम नहीं चलेगा। यही कारण है कि हम ग्रामस्वराज्य को आगे बढ़ाना चाहते हैं, ताकि इनसान संस्थावाद से निकलकर समाजवादी क्रियाशीलता का अधिष्ठान कर सके।

जब हम संस्थावाद की बात करते हैं तब हमें मानव-इतिहास की कड़ी की एक भयावह परिस्थिति की ओर भी ध्यान देने की जरूरत है।

वस्तुतः इनसान ने सेवक और सेवा-संस्थाओं का आविष्कार यों ही नहीं किया था, बल्कि कुछ आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किया था। प्रारंभ में जिन्दा रहने के लिए आवश्यक अन्न-वस्त्र के उत्पादन के औजार अत्यन्त निम्न कोटि के होने के कारण, पैदा करके जीना अत्यधिक कष्टकर तथा समय-सापेक्ष प्रक्रिया रही है। ऐसी स्थिति में मानव-प्रगति के लिए चिन्तन, मनन, अध्ययन, अध्यापन तथा सुरक्षा के लिए समय निकालना संभव नहीं रहा होगा। तो स्वभावतः जनता ने योग्य तथा बुद्धिमान लोगों को चुनकर उन्हें उत्पादन के कठोर काम से मुक्त कर उपर्युक्त सेवा के काम में लगाया तथा उनके गुजारे के लिए अपने उत्पादन में से थोड़ा-थोड़ा निकाल कर पूरा करने लगा। इस प्रक्रिया में से नयी समस्याएं निकलीं। उन सेवकों की जो संतानें थीं, जिन्हें माता-पिता के कोमल तथा विशिष्ट जीवन जीने का अभ्यास हो गया था, उन्हें भी उसी प्रकार जीवन की सुविधाएं आवश्यक हो गयीं। अतः यह अनिवार्य हो गया कि उनके लिए भी सेवा का ही नया-नया कार्यक्रम खोज निकाला जाय। इस तरह सेवक-वर्ग बढ़ते-बढ़ते आज इतने विशाल पैमाने पर जनता की छाती पर फैल गया है कि वही मनुष्य के दमन और शोषण के लिए एक प्रमुख कारण बन गया है।

यदि इतिहास को गहराई से समझेंगे तो पता लगेगा कि विश्व के सामान्य जन ने जब देखा कि सामंत-वर्ग उनका दमन और शोषण करने वाला बन गया है, तो उसने क्रांति कर उसके विघटन का प्रयास किया। लेकिन सामंत-वर्ग के विघटन के बाद जिस पूंजीपति-वर्ग का विस्तार हुआ वह जनता की छाती पर और भी बड़ा बोझ बनकर बैठ गया। तब फिर प्रजा ने क्रांति कर उस वर्ग के विघटन का भी प्रयास किया। लेकिन उसके विघटन से जिस सेवक-वर्ग के सहारे समाज चलता रहा, वह आज पूंजीपति वर्ग से अधिक व्यापक पैमाने पर जनता की छाती पर सबसे भारी बोझ बनकर उसे दबा रहा है। इसलिए आज के समाज की क्रांति सेवक-वर्ग से मुक्ति की ही हो सकती है। यही कारण है कि गांधीजी संचालित-समाज के स्थान पर सहकारी-समाज की स्थापना करना चाहते थे। यही कारण है कि हम लोग शासन-मुक्त समाज चाहते हैं और यही कारण है कि विनोबाजी ने हमारे आंदोलन के लिए तंत्रमुक्त, निधिमुक्त प्रक्रिया अपनाने को कहा था। ❑

–प्रस्तुति : बद्रीनाथ सहाय

('लोक क्रांति पाथेय')

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) अशोक भारत (प्रकाशक), सुरभि प्रिन्टर्स, इंडियन प्रेस कॉलोनी, मलदहिया वाराणसी से मुद्रित तथा सर्व सेवा संघ-परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001, फोन एवं फैक्स नं. 0542-2440385 से प्रकाशित। संपादक : बिमल कुमार। छपी प्रतियाँ : 1600